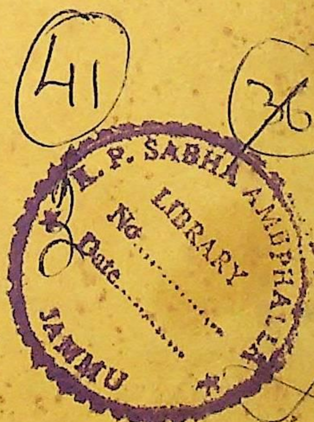
* ओ३म् *

देवयज्ञ-प्रदीप

शब्दार्थ और भावार्थ सहित सम्पूर्ण हवन मन्त्र

—***—





सूचनायें

—❀×❀—

१—'साहित्य-मण्डल' ने अपनी नई योजना के अनुसार जो यह उच्चकोटि की अत्यन्त सस्ती पुस्तकों का प्रकाशन आरम्भ किया है, इस पर सर्वत्र बहुत आश्चर्य प्रगट किया जा रहा है; क्योंकि इस मँहगाई के युग में इतने कम मूल्य में उत्तम पुस्तकों को देना एक असाधारण बात है। फिर भी 'मण्डल' अपने प्रेमी ग्राहकों के सहयोग से सफलता का पूर्ण विश्वास रखता है।

२—प्रायः सभी स्थानों पर आर्य समाजों के साथ पुस्तक विक्रय-विभाग भी होते हैं। इन विभागों से 'मण्डल' द्वारा नियत मूल्य में ही 'मण्डल' की सब धार्मिक पुस्तकें खरीदी जा सकती हैं। सभी नगरों में अच्छे पुस्तक विक्रेताओं से भी 'मण्डल' की पुस्तकें मिल सकती हैं।

३—यदि किसी सज्जन के पास आर्य समाज या वैदिक-धर्म के विषय में प्रकाशनार्थ कोई पुस्तक तैयार हो या तैयार की जा रही हो तो वे विवरण सहित हमें लिखने की कृपा करें। उत्तम होने पर उन पुस्तकों को मुद्रित कराने का उद्योग किया जायेगा।

४—जो सज्जन अपने अवकाश के समय में धार्मिक पुस्तकों के प्रचार के साथ-साथ थोड़ा आर्थिक लाभ भी प्राप्त करना चाहें, वे भी नीचे के पते पर पत्र व्यवहार करें।

प्रबन्धक,

साहित्यमण्डल, दीवानहाल,

दिल्ली

* ओ३म् *

देवयज्ञ-प्रदीप

[शब्दार्थ और भावार्थ सहित सम्पूर्ण हवन मन्त्र]

—***—

सम्पादक

श्री जगत कुमार शास्त्री

आर्योपदेशक

—***—



प्रथम बार]

[आठ आने

प्रकाशक
साहित्य-मण्डल
दीवानहाल
दिल्ली

श्रीमती लीलावती स्मारक प्रकाशन के दो पुष्प

वेद में स्त्रियां

या महिलाओं का धर्म-शास्त्र

ले० श्री० पं० गणेशदत्त जी 'इन्द्र' विद्यावाचस्पति

भूमिका लेखक—आचार्य नरदेव जी शास्त्री वेदतीर्थ

—❀❀❀—

बहुत उत्तम दूसरा संस्करण तैयार है। पत्र-पत्रिकाओं एवं विद्वानों ने इस पुस्तक की खूब सराहना की है। महिला-वर्गोपयोगी सब उत्तम बातें इसमें आगई हैं। किसी प्रकार की अश्लीलता इसमें नहीं है। प्रचार के लिये २२० पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य केवल एक रुपया आठ आने है।

वेद तत्व-मीमांसा

ले० स्वर्गीय श्री० पं० व्यासदेवजी शास्त्री, एम० ए०

स्वर्गीय शास्त्री जी का यह वेद विषयक अत्यन्त उत्तम निबन्ध अभी-अभी प्रकाशित हुआ है। मूल्य तीन आने।

साहित्य-मण्डल, दीवानहाल, दिल्ली

मुद्रक
रूपवाणी प्रिंटिंग हाउस,
दरियागंज,
दिल्ली

सम्पादकीय

वैदिक जीवन-प्रणाली जीवन के सभी महत्वपूर्ण, कार्यों, परिवर्तनों, घटनाओं और सम्बन्धों आदि का प्रतिपादन यज्ञ के रूप में करती है। अखिलविश्व एक महान यज्ञ है। मानव का आदि और अन्त रहित जीवन-संघर्ष यज्ञ है। संयोग और वियोग यज्ञ हैं। रात और दिन का सम्मिलन, ऋतुओं का परिवर्तन, सूर्य-चन्द्र का उदय और अस्त, व्यक्ति का जीवन मरण, हँसना बोलना, बड़े बड़े युद्ध, सन्धि-विग्रह आदि भी यज्ञ हैं। यज्ञ शब्द का अर्थ बहुत विस्तृत और गम्भीर है। संक्षेप में देवपूजा, संगति करण और दान मात्र को यज्ञ कहते हैं।

आर्य मर्यादानुसार ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, अतिथियज्ञ और भूतयज्ञ अथवा बलिवैश्वदेवयज्ञ इन पांच महायज्ञों को नित्यप्रति विधि एवं श्रद्धापूर्वक करना सब वैदिकधर्मी स्त्री-पुरुषों के लिये आवश्यक है। यज्ञ विषय में आर्यग्रन्थों में बहुत कुछ लिखा गया है। जो सज्जन विशेष देखना चाहें वे महर्षिदयानन्द कृत ग्रन्थों, मनु आदि स्मृतियों, गृह्यसूत्रों और मीमांसा दर्शन आदि में देख लें।

देवयज्ञ में प्रयुक्त ईश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासना, स्वस्तिवाचन, शान्तिप्रकरण और प्रधान एवं दैनिक होम में व्यवहृत होने वाले सब मन्त्रों के शब्दार्थ और भावार्थ दर्शाने वाली एक पुस्तक की आवश्यकता देर से अनुभव की जा रही थी। आशा है इसके स्वाध्याय द्वारा आर्य जनता के वेदप्रेम और यज्ञभाव में उत्तरोत्तर अभिवृद्धि होगी।

'देवयज्ञ-प्रदीप' की एक विशेषता यह है कि महर्षि दयानन्द कृत वेद भाष्य एवं अन्य ग्रन्थों में जिन मन्त्रों के अर्थ उपलब्ध होते हैं, वे महर्षि के शब्दों में ही उद्धृत किये गये हैं।

—जगत कुमार शास्त्री

कुछ आरम्भिक बातें

१—यज्ञ कुण्ड भूमि में बनाना चाहिये। अथवा लोहे या तांबे या मिट्टी का भी हो सकता है। कुण्ड की लम्बाई चौड़ाई और गहराई बराबर तथा नीचे का भाग लम्बाई आदि का एक चौथाई हो। आर्यों के घर में यज्ञ के लिये नियत स्थान होना चाहिये। यज्ञ कुण्ड के समीप तथा यज्ञ के समय विशेषतया पवित्रता का पूर्ण ध्यान रखना चाहिये।

२—यज्ञ के लिये समिधायें सूखी हों। आम, पलाश, बड़, पीपल, गूलर, जंड, शमी, बिल्व आदि की समिधायें उत्तम हैं। समिधाओं को कुण्ड के परिमाण में काट लेना चाहिये। घुण की खाई हुई, कीड़ों वाली, गीली अथवा किसी प्रकार की गन्दगी वाली समिधाओं का उपयोग यज्ञ में कभी न हो।

३—यज्ञ में अपनी सामर्थ्य के अनुसार घी की मात्रा कम या अधिक कर सकते हैं परन्तु घी शुद्ध हो। पिघला कर थोड़ा घी सामग्री में मिला लें।

४—बड़े यज्ञों में विशेष यज्ञपात्र होते हैं। दैनिक तथा अन्य साधारण यज्ञों में घी रखने की कटोरी, आहुति डालने का चम्मच, सामग्री रखने की थाली, आचमन के लिये पानी का गिलास और एक छोटा चमचा तथा पानी का एक लोटा जरूरी हैं।

५—मन्त्र पाठ शुद्ध और स्पष्ट हो। यदि एक से अधिक मनुष्य मन्त्रोचारण कर रहे हों तो सब स्वर मिलाकर पाठ करें। आगे पीछे या ऊंचे नीचे बोलना बुरा है। दैनिकयज्ञ में स्वस्ति-वाचन और शान्ति प्रकरण का पाठ नहीं होता। मन्त्र कण्ठस्थ करें करायें। पुस्तक की सहायता से यज्ञ करना कराना उत्तम नहीं।

६—सूर्योदय के पश्चात् और सूर्यास्त से पूर्व अग्निहोत्र का समय है। यज्ञ कर्त्ता पूर्वाभिमुख बैठे।

७—यदि अधिक आहुतियां देनी हों तो गायत्री मन्त्र से अन्त में 'स्वाहा' बोलकर जितनी आहुतियाँ चाहें दें। यह महर्षि दयानंद का मत है। आहुति देकर घी की बूंदें किसी जलपात्र आदि में न टपकायें।

८—दोनों समय स्त्री-पुरुष मिल कर हवन किया करें। घर के सब बालक, नौकर, अन्यलोग तथा अतिथि भी उपस्थित रहें। यज्ञ के समय उपस्थित सब स्त्रि-पुरुषों को मंत्रोच्चारण करने चाहियें! जो न कर सकें शान्त रहें। कोई बातें न करें। जूते लेकर न फिरें न बैठें। धूम्रपान न करें। यजमानों को स्वय मन्त्रोच्चारण की योग्यता होनी चाहिये। पण्डितों या पुरोहितों पर निर्भर रहना उचित नहीं है।

९—सब मन्दिरों, धर्मस्थानों, पाठशालाओं आदि में दैनिक यज्ञ तथा विशेषयज्ञों का प्रबन्ध करें करायें।

१०—देवयज्ञ में कुछ खर्च तो होता ही है। जो जितना खर्च कर सकें उसके अनुसार अपना कार्यक्रम रखें। परन्तु सामर्थ्य होने पर कंजूसी न करें। जो बहुत ही असमर्थ होवें वे श्रद्धापूर्वक, श्रद्धा के कुण्ड में अपनी भावना की आहुती देते अर्थात् शुद्धाचरण करते हुये बढ़ते चलें। असमर्थता के कारण अपवित्र या घटिया वस्तुओं का उपयोग न करें। हाँ मित्र तथा पड़ौसी परस्पर मिल कर अपने यज्ञ में होने वाले व्यय की व्यवस्था कर सकें तो भी ठीक है। अथवा मन्त्रपाठ किया करें।

११—दिखावे के लिये यज्ञ करना अत्यन्त निन्दित समझें। यज्ञ के आध्यात्मिक लाभ भौतिक लाभ से बहुत अधिक हैं।

हवन सामग्री का योग

१२—पवित्रता और यज्ञ-फल-लाभ के विचार से घर में ही हवन सामग्री तैयार कराना सर्वोत्तम है। बाजार में प्रायः हवन सामग्री के नाम पर कूड़ा कचरा ही वेचा जाता है। सामग्री के लिये मन्दिरों आदि के साधारण नौकरों का विश्वास न करें। यज्ञ के सब कार्य अधिकारियों और गृह-स्वामियों को स्वयं करने चाहियें। हवन सामग्री का योग इस प्रकार है:—

नाम	भाग	नाम	भाग
चन्दनचूरा सफेद	२४	गुलसुर्ख़	३०
अगर	१५	छुहारा	३०
तगर	१५	इन्द्र जौ	१५
गूगल	३०	कपूर कचरी	१५
जायफल	७	आंवला	१५
जावित्री	७	किशमिश	३०
दालचीनी	१५	बालछड़	३०
तालीसपत्र	१५	नागकेशर	७
पानड़ी	१५	तुम्बुरु	३०
लौंग	१५	सुपारी	३०
बड़ी इलायची	१५	नीम के पत्ते	३०
गोला	३०	बूराखांड	६०
नागरमोथा	१५	घी	६०
		सर्व योग—	६०० भाग

कपूर, घी, मेवे, खांड और अधिक मूल्य की सब औषधियां हवन के समय ही सामग्री में मिलायें।

—❀×❀—

ओ३म्

देवयज्ञ-प्रदीप

—❀×❀—

अथेश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासनाः

—❀×❀—

ओ३म् । विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव ।
यद्भद्रन्तन्न आसुव ॥१॥ यजु० ३०।३॥

अर्थ हे (सवितः) सकल जगत् के उत्पत्तिकर्त्ता, समग्र ऐश्वर्य युक्त (देव) शुद्धस्वरूप सब सुखों के दाता परमेश्वर ! आप कृपा करके (नः) हमारे (विश्वानि) सम्पूर्ण (दुरितानि) दुर्गुण दुर्व्यसन और दुःखों को (परा, सुव) दूर कर दीजिये (यत्) जो (भद्रम्) कल्याण कारक गुण, कर्म, स्वभाव और पदार्थ हैं (तत्) वह सब हमको (आ, सुव) प्राप्त कीजिये ॥१॥

हिरण्यगर्भःसमवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥२॥
यजु० १३।४॥

अर्थ—जो (हिरण्यगर्भः) स्वप्रकाशस्वरूप और जिसने प्रकाश करने हारे सूर्य चन्द्रमादि पदार्थ उत्पन्न करके धारण किये हैं जो (भूतस्य) उत्पन्न हुये सम्पूर्ण जगत् का (जातः) प्रसिद्ध (पतिः) स्वामी (एकः) एक ही चेतनस्वरूप (आसीत्) था, जो (अग्रे) सब जगत् के उत्पन्न होने से पूर्व (समवर्त्तत)

वर्तमान था। (सः) सो (इमाम्) इस (पृथिवीम्) भूमि (उत) और (द्याम्) सूर्यादि को (दाधार) धारण कर रहा है, हम लोग उस (कस्मै) सुख स्वरूप (देवाय) शुद्ध परमात्मा के लिये (हविषा) ग्रहण करने योग्य योगाभ्यास और अति प्रेम से (विधेम) विशेष भक्ति किया करें।

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः। यस्यच्छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥३॥ यजु० २५।१३॥

अर्थ—(यः) जो (आत्मदाः) आत्म ज्ञान का दाता (बलदा) शरीर, आत्मा और समाज के बल का देने हारा (यस्य) जिस को (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (उपासते) उपासना करते हैं और (यस्य) जिस का (प्रशिषम्) प्रत्यक्ष सत्य स्वरूप शासन और न्याय अर्थात् शिक्षा को मानते हैं। (यस्य) जिसका (छाया) आश्रय ही (अमृतम्) मोक्ष सुखदायक है (यस्य) जिस का न मानना अर्थात् भक्ति न करना ही (मृत्युः) मृत्युः आदि दुःख का हेतु है, हम लोग उस (कस्मै) सुख स्वरूप (देवाय) सकल ज्ञान के देने हारे परमात्मा की प्राप्ति के लिये (हविषा) आत्मा और अन्तःकरण से (विधेम) भक्ति अर्थात् उसी की आज्ञा पालन करने में तत्पर रहें ॥३॥

यः प्राणतो निमिषतो महत्वैक इद्राजा जगतो बभूव। य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥४॥ यजु० २३।३॥

अर्थ—(यः जो (प्राणतः) प्राण वाले और (निमिषतः) अप्राणि रूप (जगतः) जगत् का (महित्वा) अपनी अनन्त महिमा से (एक इत्) एक ही (राजा) विराजमान राजा (बभूव) है, (यः) जो (अस्य) इस (द्विपदः) मनुष्यादि और (चतुष्पदः) गौ आदि प्राणियों के शरीर की (ईशे) रचना करता है, हम उस (कस्मै) सुखस्वरूप (देवाय) सकल ऐश्वर्य के देने हारे परमात्मा के लिये (हविषा) अपनी सकल उत्तम सामग्री से (विधेम) भक्ति करें ॥४॥

येन द्यौरुग्रा पृथ्वी च दृढा येन स्वः स्तभितं येन नाकः । यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥५॥ यजु० ३२।६॥

अर्थ—(येन) जिस परमात्मा ने (उग्रा) तीक्ष्ण स्वभाव वाले (द्यौः) सूर्य आदि (च) और (पृथिवीं) भूमि को (दृढा) धारण (येन) जिस जगदीश्वर ने (स्वः) सुख को (स्तभितम्) धारण और (येन जिस ईश्वर ने (नाकः) दुःख रहित मोक्ष को धारण किया है (यः) जो (अन्तरिक्षे) आकाश में (रजसः) सब लोक लोकान्तरों को (विमानः) विशेष मानयुक्त अर्थात् जैसे पक्षी आकाश में उड़ते हैं, वैसे सब लोकों का निर्माण करता और भ्रमण कराता है, हम लोग उस (कस्मै) सुखदायक (देवाय) कामना करने योग्य परब्रह्म की प्राप्ति के लिये (हविषा) सब सामर्थ्य से (विधेम) विशेष भक्तिकरें ॥५॥

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव । यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥६॥ ऋग्वेद मं० १० । सू० १२१ । मं० १० ॥

अर्थ—हे (प्रजापते) सब प्रजा के स्वामी परमात्मा ! (त्वत्) आप से (अन्यः) भिन्न दूसरा कोई (ता) उन (एतानि) इन (विश्वा) सब (जातानि) उत्पन्न हुये जड़ चेतनादिकों को (न) नहीं परि, बभूव) तिरस्कार करता है अर्थात् आप सर्वोपरि हैं (यत्कामाः) जिस जिस पदार्थ की कामना वाले हम लोग (ते) आप का (जुहुमः) आश्रय लेवें और वाञ्छा करें (तत्) उस २ की कामना (नः) हमारी सिद्ध (अस्तु) होवे, जिस से (वयम्) हम लोग (रयीणाम्) धनैश्वर्यों के (पतयः) स्वामी (स्याम) होवें ॥६॥

स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा । यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ॥

यजु० ३२।१०॥

अर्थ—हे मनुष्यो ! (सः) वह परमात्मा (नः) अपने [हम] लोगों को (बन्धुः) भ्राता के समान सुखदायक, (जनिता) सकल सगत् का उत्पादक, (सः) वह (विधाता) सब कामों का पूर्ण करने हारा (विश्वा) सम्पूर्ण (भुवनानि) लोकमात्र और (धामानि) नाम, स्थान, जन्मों को (वेद) जानता है और (यत्र) जिस (तृतीये) सांसारिक सुख दुःख से

रहित नित्यानन्दयुक्त (धामन्) मोक्षस्वरूप धारण करने हारे परमात्मा में (अमृतम्) मोक्ष को (आनशानाः) प्राप्त हो के (देवाः) विद्वान् लोग (अध्यैरयन्त) स्वेच्छा पूर्वक विचरते हैं, वही परमात्मा अपना गुरु, आचार्य, राजा और न्यायाधीश है, अपने [हम] लोग मिल के सदा उस की भक्ति किया करें ॥७॥

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् । युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम ॥८॥ यजु० ४०।१६॥

अर्थ—हे (अग्ने) स्वप्रकाश ज्ञानस्वरूप सब जगत् के प्रकाश करने हारे (देव) सकल सुखदाता परमेश्वर ! आप जिस से (विद्वान्) सम्पूर्ण विद्यायुक्त हैं, कृपा कर के (अस्मान्) हम लोगों को (राये) विज्ञान वा राज्यादि ऐश्वर्य के लिये (सुपथा) अच्छे धर्मयुक्त आप्त लोगों के मार्ग से (विश्वानि) सम्पूर्ण (वयुनानि) प्रज्ञान और उत्तम कर्म (नय) प्राप्त कराइये और (अस्मत्) हमसे (जुहुराणम्) कुटिलतायुक्त (एनः) पापरूप कर्म को (युयोधि) दूर कीजिये, इस कारण हम लोग (ते) आप की (भूयिष्ठाम्) बहुत प्रकार की स्तुतिरूप (नम उक्तिम्) नम्रता पूर्वक प्रशंसा (विधेम) सदा किया करें ॥८॥

इति ईश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासना ॥

अथ स्वस्तिवाचनम्

—:x:—

ओं अग्निमीले पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् । होतारं रत्नधातमम् ॥१॥ ऋ० १ । १ । १ ॥

शब्दार्थ - (यज्ञस्य) यज्ञ के (होतारं) ग्रहण करने वाले (पुरोहितं) उत्पत्ति के समय से पहिले परमाणु आदि सृष्टि के धारण करने और (ऋत्विजम्) वारंवार उत्पत्ति के समय में स्थूल सृष्टि के रचने वाले तथा ऋतु २ में उपासना करने योग्य (रत्नधातमम्) और निश्चय करके मनोहर पृथिवी वा सुवर्ण आदि रत्नों के धारण करने वाले (अग्नि) परमेश्वर की (ईले) मैं स्तुति करता हूँ ।

भावार्थ—पिता के समान कृपाकारक परमेश्वर सब जीवों के हित और सब विद्याओं की प्राप्ति के लिये कल्प कल्प के आदि में वेद का उपदेश करता है, जैसे पिता वा अध्यापक अपने शिष्य वा पुत्र को उपदेश करता है कि तू ऐसा कर वा ऐसा वचन कह, सत्य वचन बोल, वा शिष्य भी कहता है कि सत्य बोलूंगा, पिता और आचार्य की सेवा करूँगा, झूठ न कहूँगा, इस प्रकार जैसे परस्पर शिक्षक लोग शिष्य वा लड़कों को उपदेश करते हैं, वैसे ही (अग्निमीले) इत्यादि वेद मन्त्रों में भी जानना चाहिये, क्योंकि ईश्वर ने वेद सब जीवों के उत्तम सुख के लिये प्रकट किया है । इसी 'अग्निमीले' वेद के उपदेश का

परोपकार फल होने से इस मन्त्र में 'ईले' यह उत्तम पुरुष का प्रयोग भी है। (अग्निमीले) परमार्थ और व्यवहार विद्या की सिद्धि के लिये अग्नि शब्द कर के परमेश्वर और भौतिक में दोनों अर्थ लिये जाते हैं। जो पहले समय में आर्य लोगों ने अश्व विद्या के नाम से शीघ्र गमन का हेतु शिल्प विद्या उत्पन्न की थी वह अग्नि विद्या की ही उन्नति थी। आप ही आप प्रकाशमान सब का प्रकाश और अनन्त ज्ञानवान् आदि हेतुओं से अग्नि शब्द करके परमेश्वर तथा रूप, दाह, प्रकाश, वेग, छेदन गुण और शिल्प विद्या के मुख्य साधक आदि हेतुओं से प्रथम (इस) मन्त्र में भौतिक अर्थ का ग्रहण किया (जाता) है ॥१॥

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव। सचस्वा नः स्वस्तये ॥२॥ ऋ० १।१।६॥

शब्दार्थ—हे (अग्ने) ज्ञानस्वरूप परमेश्वर (सः) वह आप (पितेव) जैसे पिता (सूनवे) अपनी सन्तान के लिये होता है, वैसे ही (नः) हमारे लिये (सूपायनः) शोभन ज्ञान जो कि सब सुखों का साधक और उत्तम २ पदार्थों का प्राप्त करने वाला है उसके देने वाले (भव) होवो। (नः) हम लोगों को (स्वस्तये) सब सुख के लिये (सचस्व) संयुक्त कीजिये।

भावार्थ—सब मनुष्यों को उत्तम प्रयत्न और ईश्वर की प्रार्थना इस प्रकार से करनी चाहिये हे भगवन्! जैसे पिता अपने पुत्रों को अच्छी प्रकार पालन करके और उत्तम २ शिक्षा

दे कर उनको शुभ गुण और श्रेष्ठ कर्म करने के योग्य बना देता है वैसे ही आप हम लोगों को शुभ गुण और शुभ कर्मों में युक्त सदैव कीजिये ।।२।।

स्वस्ति नो मिमीतामश्विना भगः स्वस्ति देव्यदितिरनर्वणः । स्वस्ति पूषा असुरो दधातु नः स्वस्ति द्यावापृथिवी सुचेतुना ॥३॥ ऋ० ५।५१।११

शब्दार्थ—(अश्विना) अध्यापक और उपदेशक (अनर्वणः) ऐश्वर्य रहित का (स्वस्ति) सुख (मिमीतां) रचें । (भगः) ऐश्वर्य कर्त्ता वायु (नः) हमारे लिये (स्वस्ति) सुखमय हो । (देवी) प्रकाशित (अदितिः) अखण्डित विद्या (नः) हम लोगों के लिये (स्वस्ति) सुखमय हो (पूषा) पुष्टि कारक दुग्धादि पदार्थ और (असुर) मेघ (नः) हमारे लिये (स्वस्ति) सुख को (दधातु) धारण करें (द्यावापृथिवी) प्रकाश और भूमि (सुचेतुना) उत्तम विज्ञापन से (स्वस्ति) सुखमय हों ।

भावार्थ—जो मनुष्य पदार्थविद्या से जिन पदार्थों को उपयुक्त करें, अर्थात् काम में लावें, वे उन से उपकार ग्रहण करने में समर्थ होवें ।

स्वस्तये वायुमुपब्रवामहै सोमं स्वस्ति भुवनस्य यस्पतिः । बृहस्पतिं सर्वगणं स्वस्तये स्वस्तय आदित्यासो भवन्तु नः ॥४॥ ऋ० ५।५१।१२॥

शब्दार्थ—(स्वस्तये) सुख के लिये हम (वायुम्) वायु विद्या का (सोमम्) और ऐश्वर्य का (उपब्रवामहै) उपदेश करें। (भुवनस्य) लोक का (यः) जो (पतिः) पालक [है, वह] (स्वस्ति) सुख को और (सर्व गणम्) सम्पूर्ण समूहों वाले (बृहस्पतिम) वेदवाणियों के स्वामी को [धारण करें] आदित्यासः) अड़तालीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य पूर्वक विद्याभ्यास किये हुये विद्वान् (स्वस्तये) परम सुख के लिये (नः) हमारे लिये (भवन्तु) हों।

भावार्थ—मनुष्य परस्पर पदार्थविद्या को सुन और अभ्यास करके विद्वान् होवें।

विश्वेदेवा नो अद्या स्वस्तये वैश्वानरो वसुरग्निः स्वस्तये। देवा अवन्त्वृभवः स्वस्तये स्वस्ति नो रुद्रः पात्वंहसः ॥५॥
ऋ० ५।५१।१३॥

शब्दार्थ—(विश्वे) सारे (देवाः) विद्वान् (स्वस्तये) सुख के लिये (नः) हमारी (अद्या इस समय (अवन्तु) रक्षा करें (वैश्वानरः) सब मनुष्यों में प्रकाशमान (वसुः) सर्वत्र बसने वाला (अग्निः) अग्नि (स्वस्तये) आनन्द के लिये हो। (ऋभवः) बुद्धिमान् (देवाः) विद्वान् जन (स्वस्तये) विद्या सुख के लिये (अवन्तु) रक्षा करें। (रुद्रः) दुष्टों को दण्ड देने वाला (स्वस्ति) सुख की भावना करके (अंहसः) अपराध से (नः) हमारी (पातु) रक्षा करे॥

भावार्थ—विद्वानों को योग्य है कि उपदेश और अध्यापन से सब मनुष्यों की निरन्तर रक्षा करके वृद्धि करावें ॥५॥

स्वस्ति मित्रावरुणा स्वस्ति पथ्ये रेवति । स्वस्ति न इन्द्रश्चाग्निश्च स्वस्ति नो अदिते कृधि ॥६॥

ऋ० ५।५१।१४॥

शब्दार्थ—(मित्रावरुणा) प्राण और उदान (स्वस्ति) सुखमय हों । (हे अदिते) अखण्ड विद्या के विद्वान् (रेवति) बहुत धन वाले आप, (पथ्ये) मार्ग युक्त कर्म में [धर्म मार्ग में] (नः) हमारे लिये (स्वस्ति) कल्याण (कृधि) करें । (इन्द्राग्निश्च) वायुः और बिजली नः) हमारे लिये (स्वस्ति) सुख देने वाले हों ।

भावार्थ– जो सब चीजों के लिये सुख देता है वही विद्वान् प्रशंसित होता है ॥६॥

स्वस्ति पन्थामनुचरेम सूर्याचन्द्रमसाविव । पुनर्ददताघ्नता जानता सङ्गमेमहि ॥७॥ ऋ० ५।५१।१५॥

शब्दार्थ—(स्वस्तिपन्थाम्) कल्याण के मार्गों के (अनुचरेम) हम अनुगामी हों, (सूर्याचन्द्रमसौ इव) सूर्य और चन्द्र के सदृश (पुनः) फिर (ददता) दान करने वाले (अघ्नता) नाश न करने वाले (जानता) अच्छी तरह से जानने वाले [विद्वान] का (सम , गमेमहि) हम सङ्ग करें ।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य और चन्द्रमा नियम से

दिन रात्रि चलते हैं, वैसे न्याय के मार्ग को प्राप्त हूजिये । और सज्जनों के साथ समागम करिये ॥७॥

ये देवानां यज्ञिया यज्ञियानां मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः । ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥८॥ ऋ० ७।३५।१५॥

शब्दार्थ—(ये) जो (देवानाम) विद्वानों के बीच विद्वान् (यज्ञियानाम) यज्ञ करने के योग्यों में (यज्ञियाः) यज्ञ करने योग्य (मनोः) विचारशील के (यजत्राः) संग करने (अमृताः) अपने स्वरूप से नित्य वा जीवन्मुक्त रहने (ऋतज्ञाः) और सत्य के जानने वाले (ते) वे (अद्य) आज अब (नः) हम लोगों के लिये (उरुगायम) बहुतों के गाये हुये विद्या बोध को (रासन्ताम्) देवें । हे विद्वानो ! (यूयम्) तुम (स्वस्तिभिः) विद्यादि दानों से (नः) हम लोगों की (सदा) सर्वदा (पात) रक्षा करो ।

भावार्थ हे मनुष्यो ! जो अत्यन्त विद्वान्, अत्यन्त शिल्पी, सत्य आचरण करने वाले, जीवन्मुक्त, ब्रह्मवेत्ता जन हम लोगों को विद्या और सुन्दर शिक्षा से निरन्तर उन्नति देते हैं उनको हम लोग रख कर सदा सेवें ॥८॥

येभ्यो माता मधुमत्पिन्वते पयः पीयूषं द्यौरदितिरद्रिबर्हाः । उक्थशुष्मान् वृषभरान्त्स्वप्नसस्ताँ आदित्याँ अनुमदा स्वस्तये ॥९॥ ऋ० १०।६३।३॥

शब्दार्थ—(येभ्यः) जिन [विद्वानों] के लिये (द्यौः) द्यु लोक (अद्रिबर्हाः) और मेघ से फैलाई हुई (अदितिः) अखण्ड (माता) पृथिवी या वेद विद्या (मधुमत) मिठास से युक्त (पीयूषम्) अमृत (पयः) दूध को (पिन्वते) बहा रही है, (तान्) उन (उक्थशुष्मान्) उत्तम बलवाले (वृषभरान) यज्ञ द्वारा वृष्टि का आहरण करने हारे (स्वप्नसः) सुकर्मी (आदित्यान्) आदित्य ब्रह्मचारियों का (स्वस्तये) कल्याण के लिये (अनुमदा) प्रसन्न करें, पश्चात् प्रसन्न हों।

भावार्थ—जो विद्वान् प्रकृति के नियमों को जान कर अग्नि जल आदि जड़ पदार्थों से काम लेना जानते हैं, पृथिवी उनके लिये अनन्त सुखों के देने वाली है, हमारा कल्याण तभी होगा यदि हम उन विद्वानों की सेवा आदि द्वारा उन को प्रसन्न कर के उन से उपदेश ग्रहण कर के उपदेशों के अनुकूल चलेंगे ॥९॥

नृचक्षसो अनिमिषन्तो अर्हणा बृहद्देवासो अमृतत्वमानशुः। ज्योतीरथा अहिमाया अनागसो दिवो वर्ष्माणं वसते स्वस्तये ॥१०॥ ऋ० १०।६३।४॥

शब्दार्थ—(नृचक्षसः) विद्वान् लोग [कैसे विद्वान्] (अनिमिषन्तः) दिन रात कार्य करने वाले परिश्रमी (देवासः) दिव्य गुणों से युक्त ब्रह्मज्ञानी (अर्हणाः) उत्कृष्ट योग्यता को प्राप्त (बृहत्) अत्यधिक (अमृतत्वम्) अमृतत्व स्थिरयश वा मोक्ष को (आनशुः) प्राप्त करते हैं। [और वह] (ज्योतीरथाः)

प्रकाश में रमण करने वाले (अह्रिमाया) व्यापक बुद्धि वाले (अनागसः) पाप रहित पुरुष (दिवः) प्रकाश युक्त (वर्ष्माणं) शरीर अथवा उच्च देश वा पद को (स्वस्तये) सब के आनन्द के लिये (वसते) धारे रहते हैं ।

भावार्थ—विद्वान् जो परिश्रमी और योग्य होते हैं जिन के जीवन प्रकाशमय होते हैं, जो कई विद्याओं में गमन करने वाली बुद्धि को प्राप्त होते है, और जो पापों से बचे रहते हैं, उन के जीवन संसार के उपकार के लिये होते हैं, वे संसार में यश को प्राप्त होते और मृत्यु के पश्चात् वे मोक्ष के भागी बनते हैं ॥ १० ॥

सम्राजो ये सुवृधो यज्ञमाययुरपरिह्वृता दधिरे दिवि क्षयम् । तां आ विवास नमसा सुवृक्तिभिर्महो आदित्यां अदितिं स्वस्तये ॥११॥ १०।६३।५॥

शब्दार्थ—(ये) जो (सुवृधः) अपनी और दूसरों की उन्नति करते हुये (सम्राजः) स्वतेज से प्रकाशित (यज्ञम्) यज्ञ [यज्ञ रूप जीवन] को (आयुयः) प्राप्त होते हैं, (अपरिह्वृताः) कुटिलता से रहित हुये (दिवि) प्रकाश में (क्षयम्) निवास को (दधिरे) धारण करते हैं । (तान्) उन (महः) महान् (आदित्यान्) अखण्ड सिद्धान्तों के मानने वालों तथा (अदितिं) अखण्ड नियम वा सच्चाई की (स्वस्तये) कल्याण के लिये (नमसा) नमस्कार से (सुवृक्तिभिः) अच्छी तय्यार की हुई प्रार्थनाओं से (आ-विवास) सत्कार करें ।

भावार्थ—जिन विद्वान् महात्माओं का जीवन यज्ञमय होता है, जो कुटिलता रहित होते हैं, और जिन के जीवन प्रकाश से युक्त होते हैं, संसार उन की ही पूजा करता है, क्योंकि संसार के लोगों का कल्याण ऐसे महात्माओं के सत्सङ्ग से ही हो सकता है ॥ ११॥

को वः स्तोमं राधति यं जुजोषथ विश्वे देवासो मनुषो यतिष्ठन। को वोऽध्वरं तुविजाता अरं करद्यो नः पर्षदत्यंहः स्वस्तये ॥१२॥ ऋक्० १०।६३।६॥

शब्दार्थ—हे (विश्वे) सब (देवासः) दिव्यगुणों से युक्त विद्वानो (मनुषः) मननशील पुरुषो ! (यति) जितने (स्थन) तुम हो (वः) उन तुम्हारे लिये (स्तोमम्) स्तुति को (यम्) जिस को [का] (जुजोषथ सेवन करते हो (कः) कौन (राधति) सिद्ध करता है। (तुविजाताः) हे अनेक प्रकार से प्रकट होने वालो [अर्थात् जिन्होंने वेदोक्त नियमों द्वारा अपने जीवन को सफल करके अपनी कीर्त्ति का विस्तार किया है] ! (कः) कौन (वः) तुम्हारे (अध्वरम्) हिंसा रहित यज्ञ को (अरंकरत्) सुन्दर रूप से पूरा करता है, (यः) जो यज्ञ (अंहः) पाप रूप अवैदिक मार्ग को (अति) उलांघ कर (स्वस्तये) कल्याण के लिये (नः) हमें (पर्षत्) पार ले जाता है।

भावार्थ—जो स्वयं पाप से बचता है, और दूसरों को भी

पाप से घृणा करवा कर बचाने की चेष्टा करता है, ऐसा महात्मा ही लोक का सच्चा हितकारी है, ऐसे महानुभाव ही जनता का कल्याण कर सकते हैं ॥१२॥

येभ्यो होत्रां प्रथमामायेजे मनुः समिधाग्निर्मनसा सप्तहोतृभिः। त आदित्या अभयं शर्म यच्छत सुगाः नः कर्त्त सुपथा स्वस्तये ॥१३॥ ऋक्० १०।६३।७।

शब्दार्थ—(येभ्यः) जिन के लिये, (समिद्धाग्निः) प्रदीप्त अग्नि वाला [जिस ने परमात्मा को पा लिया है, अथवा अग्नि-विद्या में निपुण, अथवा जो यज्ञादि करता है, अथवा कर्म-काण्डी] (मनुः मननशील मनुष्य (मनसा) मन से (सप्त-होतृभिः) सात होताओं [आत्मा, बुद्धि, और पाञ्च ज्ञाने-न्द्रियों] के द्वारा, (प्रथमां) मुख्य (होत्रां) सत्कार को (आयेजे) [पूजा] करता है। (आदित्याः) हे अखण्ड विद्या-युक्त विद्वान् लोगो ! (ते) वे [तुम] (अभयं शर्म)। अभय और कल्याण (यच्छत) प्रदान करो। (स्वस्तये) कल्याण के लिये (नः) हमारे लिये (सुपथा) अच्छे मार्गों को (सुगाः) अच्छी प्रकार चलने के योग्य (कर्त) बनाओ ॥

भावार्थ—सच्चे विद्वान्, जिन्होंने वैदिक जीवन को धारण किया हुआ है, जो कर्मकाण्डी हैं, उन्हीं की पूजा होनी चाहिये, वे संसार में हमारे कल्याण के मार्ग को हमारे लिये सुगम बना देंगे ॥१३॥

य ईशिरे भुवनस्य प्रचेतसो विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च मन्तवः । ते नः कृतादकृतादेनसस्पर्यद्या देवासः पिपृता स्वस्तये ॥१४॥

ऋक्० १०।६३।८॥

शब्दार्थ—(ये) जो (मन्तवः) मननशील (स्थातुः) स्थावर [घर, वृक्ष, पहाड़ आदि] (जगतः) गतिशील संसार (विश्वस्य) सम्पूर्ण (भुवनस्य) संसार [के] पर (ईशिरे) राज्य करते हैं, (देवासः) हे विद्वानो ! (ते) वे [तुम] (नः) हमें (कृतात्) कर्म में आये हुये [अर्थात् शरीर से किये और] (आकृतात्) कर्म में न आये हुये [अर्थात् मानसिक] (एनसः) पाप से (परि) हटा कर (अद्य) इस जीवन में (स्वस्तये) कल्याण के लिये (पिपृत) [रक्षा करो] । [पालन करो]

भावार्थ—जो महानुभाव प्रकृति के नियमों को जानता है, जो सच्चा तत्वदर्शी है वह संसार के जड़ चेतनों पर राज्य कर सकता है, और वही मनुष्यों को पाप से बचा सकता है ॥१४॥

भरेष्विन्द्रं सुहवं हवामहेंऽहोमुचं सुकृतं दैव्यं जनम् । अग्निं मित्रं वरुणं सातये भगं द्यावापृथिवी मरुतः स्वस्तये ॥१५॥

ऋ० १०।६३।९॥

शब्दार्थ—(भरेषु) संकटों में वा सङ्ग्रामों में (सुहवम्) सुख से बुलाये जा सकने वाले (अंहोमुचम्) पापों से छुड़ाने वाले (सुकतम) जिसकी कारीगरी विचित्र हो ऐसे (दैव्यम्)

दिव्य शक्ति सम्पन्न (जनम्) अखिल ब्रह्माण्ड के उत्पन्न करने वाले (अग्निम्) ज्ञानस्वरूप (मित्रम्) सबसे स्नेह करने वाले (वरुणम्) वरणे योग्य (भगम्) भजनीय (इन्द्रम्) परमैश्वर्यवान् प्रभु को (सातये) अन्नादि लाभ के लिये (हवामहे) बुलाते हैं (द्यावापृथिवी) अन्तरिक्ष और पृथिवी (मरुतः) और वायु (स्वस्तये) हमारे कल्याण के लिये हों।

भावार्थ—सब संकट की अवस्थाओं में परमात्मा ही हमारा रक्षक है, हमें उसीसे सहायता सदा मांगनी चाहिये। १५।

सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम्। दैवीं नावं स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये ॥१५॥ ऋ० १०।६३।१०।

शब्दार्थ—(स्वस्तये) सुख के लिये (सुत्रामाणम्) अच्छे रक्षण आदि से युक्त (पृथिवीम) विस्तृत, फैली हुई (द्याम्) शुभ प्रकाश वाली (अनेहसम्) अहिंसनीय (सुशर्माणम्) शोभन सुख युक्त (अदितिम्) अखण्डित (सुप्रणीतिम्) बहुत राजा और प्रजाजनों की नीति से युक्त (स्वरित्राम्) सुन्दर बल्लियों वाली (अनागसम्) निर्दोष (अस्रवन्तीम्) छिद्र रहित (दैवीम्) विद्वान् पुरुषों की (नावम्) नौका पर (आरुहेम) हम चढ़ते हैं।

भावार्थ—हे मनुष्यो जिस में बहुत घर, बहुत साधन, बहुत रक्षा करने हारे, अनेक प्रकार का प्रकाश और बहुत विद्वान् हों

उस छिद्र रहित बड़ी नाव में स्थित हो के समुद्र आदि जल के स्थानों में पारावार देशान्तर और द्वीपान्तर में जा आ के भूगोल में स्थित देश और द्वीपों को जान के लक्ष्मीवान् होवें ॥१६॥

विश्वे यजत्रा अधि वोचतोतये त्रायध्वं नो दुरेवाया अभिह्रुतः। सत्यया वो देवहूत्या हुवेम शृण्वतो देवा अवसे स्वस्तये ॥१७॥

ऋ० १०।६३।११॥

शब्दार्थ—(विश्वे यजत्रा) हे सब पूजनीय विद्वानो! (ऊतये) रक्षा के लिये (अधिवोचत) उपदेश दें, (अभिह्रुतः) हिंसा और कुटिलतायुक्त (दुरेवायाः) दुर्गति से (नः) हमारी (त्रायध्वम्) रक्षा करो। (देवाः) हे विद्वान् लोगो! (अवसे) रक्षा के लिये (स्वस्तये) और सुख के लिये (वः) तुम (शृण्वतः) सुनते हुओं को (सत्यया देवहूत्या) सच्चे, विद्वानों के योग्य बुलावे के द्वारा (हुवेम) हम बुलाते हैं।

भावार्थ—विद्वानों के सत्योपदेश से हम दुर्गति से अपनी रक्षा कर सकते हैं, इस लिये हमें उन का सत्सङ्ग करना चाहिये ॥१७॥

अपामीवामप विश्वामनाहुतिमपारातिं दुर्विदत्रामघायतः। आरे देवा द्वेषो अस्मद्युयोतनोरु णः शर्म यच्छता स्वस्तये ॥१८॥

ऋ० १०।६३।१२॥

शब्दार्थ—(देवाः) हे विद्वानो! (अमीवाम्) पीड़ा को, रोगादि को (अप) हटाओ। (विश्वाम्) सब प्रकार के

(अनाहुतम्) अयज्ञमय जीवन को, भाव को (अप) हटाओ। (अरातिम्) दान न करने के भाव और (दुर्विदत्राम्) कुमति को (अप) हटाओ। (अघायतः) हिंसा व पाप की इच्छा करने वाले के (द्वेषः) द्वेष को (अस्मत्) हम से (आरे युयोतन) दूर हटाओ (नः) हमें (स्वस्तये) आनन्द भोगने के लिये (उरु शर्म) बहुत सुख (यच्छत्) प्रदान करो।

भावार्थ—हमें विद्वानों का उपदेश सुनना चाहिये और सत्सङ्ग करना चाहिये, ताकि हम रोगों, अयज्ञमय जीवन, और कुमति से बचे रहें। विद्वानों के उपदेश से ही हिंसक लोगों का द्वेष दूर हो सकता है, और उसी उपदेश से ही हम सुखी हो सकते हैं॥१८॥

अरिष्टः स मर्त्तो विश्व एधते प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि। यमादित्यासो नयथा सुनीतिभिरति विश्वानि दुरिता स्वस्तये॥१९॥ ऋ० १०।६३।१३॥

शब्दार्थ—(आदित्यासः) हे आदित्य ब्रह्मचारी विद्वानो! (यम) जिस मनुष्य समूह को (सुनीतिभिः) सुन्दर नीतियों से (विश्वानि दुरिता) सब पापों वा संकटों को (अति) लांघ कर (स्वस्तये) कल्याण के लिये (नयथ) अच्छे मार्ग पर चलाते हो (सः) वह (विश्वः मर्तः) सारा मनुष्य समूह (अरिष्टः) किसी से पीड़ित न हो कर (एधते) बढ़ता है, (धर्मणःपरि) धर्म में लगा हुआ (प्रजाभिः) संतानों के साथ (प्रजायते) अच्छी तरह से प्रकट होता है।

भावार्थ—शास्त्र के उपदेश और सत्संग से मनुष्य लोग सुमार्ग पर चल कर पापों से बच सकते हैं और फल फूल सकते हैं ॥१६॥

यं देवासोऽवथ वाजसातौ यं शूरसाता मरुतो हिते धने। प्रातर्यावाणं रथमिन्द्र सानसिमरिष्यन्तमा रुहेमा स्वस्तये ॥२०॥ ऋ० १।६३।१४॥

शब्दार्थ—(मरुतः देवासः) हे गति शील विद्वानो ! (वाजसातौ) अन्न की प्राप्ति में (शूरसाता) संग्राम में (यं) जिस (हिते धने) रखे हुये धन के निमित्त (इन्द्रसानसिम्) परमैश्वर्यवान् परमात्मा की प्राप्ति में साधन (प्रतर्यावाणम्) प्रातःकाल से ही चलने वाले (अरिष्यन्तम्) मजबूत (रथम्) रथ की (अवथ) आप रक्षा करते हो उस पर (स्वस्तये) कल्याण के लिये (आरुहेम) हम चढ़ें।

भावार्थ—कहा है "शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्" अर्थात् शरीर ही धर्म का मुख्य साधन है, इसी लिये वेद ने बताया कि शरीर मजबूत होना चाहिये। परमात्मा ही हमारे शरीर का रक्षक है। हमें संसार में किसी से डरना नहीं चाहिये ॥२७॥

स्वस्ति नः पथ्यासु धन्वसु स्वस्त्यप्सु वृजने स्वर्वति। स्वस्ति नः पुत्रकृथेषु योनिषु स्वस्ति राये मरुतो दधातन ॥२१॥ ऋ० १०।६३।१५॥

शब्दार्थ—(मरुतः) हे गतिशील विद्वानो ! (नः) हमारे

लिये (पथ्यासु) मार्ग के योग्य जल वाले देशों में और (धन्वसु) जल रहित मरुस्थलों में (स्वस्ति) कल्याण हो (अप्सु) जलों में (स्वस्ति) कल्याण हो, (स्वर्वति) सब आयुध से युक्त (वृजने) संग्राम में (स्वस्ति) कल्याण हो (न.) हमारे (पुत्रकृथेषु योनिषु) पुत्रों को उत्पन्न करने वाली स्त्रियों में [उत्पत्ति स्थानों में] (स्वस्ति) कल्याण करो, (राये) धनादि ऐश्वर्य के लिये (स्वस्ति) कल्याण को (दधातन) धारण करो ।

भावार्थ - विद्वानों के सत्संग और उपदेश से हमारे सब स्थानों पर कल्याण हो सकता है ॥२१॥

स्वस्ति रिद्धि प्रपथे श्रेष्ठा रेक्णस्वत्यभि या वाममेति । सा नो अमासो अरणे निपातु स्वावेशा भवतु देवगोपा ॥२२॥ ऋ० १०।६३।१६॥

शब्दार्थ—(या) जो प्रकृति (स्वस्ति) कल्याण कारिणी (इत्-हि) निश्चय कर के हो (श्रेष्ठा) श्रेष्ठ (रेक्णस्वतो) धनवाली (प्रपथे) अच्छे मार्ग पर (वामम) इच्छा करने योग्य वा वरणे योग्य के (अभि, एति) पास जाती है । (सा) वह प्रकृति (नः) हमारे (अमा) घर की (निपातु) रक्षा करे (सा उ) वही प्रकृति (अरणे) जंगल में रक्षा करे (देवगोपाः) विद्वानों से वा परमात्मा से रक्षित प्रकृति (स्वावेशा भवतु) अच्छे घरों के देने वाली हो ।

भावार्थ—संसार के सब सुख प्रकृति द्वारा ही प्राप्त होते हैं। प्रकृति सांसारिक सुखों का स्रोत है। इसी लिये वेद ने उसे धन देने वाली इत्यादि कहा है ॥ २२ ॥

इषे त्वोर्ज्जे त्वा वायव स्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण आप्यायध्वमघ्न्या इन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्मा मा वस्तेन ईशत माघशँ सो ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून् पाहि ॥२३॥

यजु० १।१।

शब्दार्थ—(सविता देवः)—सब सुखों का दाता और सारे जगत् का उत्पादक जगदीश्वर (इषे) अन्न वा विज्ञान की प्राप्ति के लिये, तथा (ऊर्ज्जे) पराक्रम अर्थात् उत्तम रस की प्राप्ति के लिये (वः) तुम्हारे जो, (वायवः) प्राण, अन्तःकरण और इन्द्रियां हैं, उन को (श्रेष्ठतमाय) अत्युत्तम (कर्मणे) यज्ञादि कर्म के लिये (प्रार्पयतु) संयुक्त करे। (इन्द्राय) ऐश्वर्य के लिये (भागम्) भाग को (आप्यायध्वम्) बढ़ाओ। (प्रजावतीः) सन्तान वाली (अनमीवा) साधारण रोगों से रहित (अयक्ष्माः) तपेदिक आदि बड़े रोगों से रहित (अघ्न्याः) गौए हों। (वः) जो भी तुम में (स्तेनः) चोर है (मा) मत (ईशत) समर्थ हों (अघशंसः) पापी (मा) मत समर्थ हो (अस्मिन् गोपतौ) इस गौवों के पति के पास (ध्रुवाः) निश्चल सुख हेतु (बह्वीः) बहुत से (स्यात) हों (यजमानस्य) यजमान के (पशून्) गौ, घोड़े, हाथी आदि पशुओं की (पाहि) रक्षा कर वा पालन कर।

भावार्थ—विद्वान् मनुष्यों को सदैव परमेश्वर और धर्मयुक्त पुरुषार्थ के आश्रय से ऋग्वेद को पढ़ के गुण और गुणी को ठीक २ जान कर सब पदार्थों के सम्प्रयोग से पुरुषार्थ की सिद्धि के लिये अत्युत्तम क्रियाओं से युक्त होना चाहिये कि जिस से परमेश्वर की कृपा पूर्वक सब मनुष्यों को सुख और ऐश्वर्य वृद्धि हो। सब लोगों को चाहिये कि अच्छे २ कामों से प्रजा की रक्षा तथा उत्तम २ गुणों से पुत्रादि की शिक्षा सदैव करें कि जिस से प्रबल रोग, विघ्न और चोरों का अभाव हो कर प्रजा और पुत्रादि सदा सुखों को प्राप्त हों, यही श्रेष्ठ काम सब सुखों की खान है। हे मनुष्य लोगो ! आओ अपने [हम] मिल के जिस ने इस संसार में आश्चर्य रूप पदार्थ रचे हैं, उस जगदीश्वर के लिये सदव धन्यवाद देवें। वही परम दयालु ईश्वर अपनी कृपा से उक्त कामों को करते हुये मनुष्यों की सदैव रक्षा करता है॥ २३॥

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः। देवा नो यथा सदमिद्वृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवेदिवे ॥२४॥ यजु० २५।१४।

शब्दार्थ—(नः) हम को (भद्रा) कल्याण करने वाले (अदब्धासः) विनाश को न प्राप्त हुये (अपरीतासः) दूसरों से न व्याप्त [सब कामों में उत्तम] (उद्भिदः) दुःख को नाश करने वाले (क्रतवः) यज्ञ वा बुद्धिबल (विश्वतः) सब ओर

से (आ, यन्तु) प्राप्त हों। (यथा) जैसे (नः) हम लोगों की (सद्म उस सभा को [कि जिसमें स्थित होते हैं] प्राप्त हुये (अप्रायुवः) जिन की आयु नष्ट नहीं होती, वे (देवाः) विद्वान् जन (इत) ही (दिवे दिवे) प्रति दिन (वृधे) वृद्धि के लिये (रक्षितारः) पालन करने वाले (असन्) हों।

भावार्थ—सब मनुष्यों को परमेश्वर के विज्ञान और विद्वानों के संग से बहुत बुद्धियों को प्राप्त हो कर सब ओर से धर्म का आचरण कर नित्य सब की रक्षा करने वाले होना चाहिये ॥२४॥

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानाᳬं रातिरभि नो निवर्त्तताम्। देवानाᳬं सख्यमुपसेदिमा वयं देवा न आयुः प्रतिरन्तु जीवसे ॥२५॥ यजु० २५।१५॥

शब्दार्थ—हे मनुष्यो ! (देवानां) विद्वानों की (भद्रा) कल्याण करने वाली (सुमतिः) उत्तम बुद्धि (ऋजूयतां) कठिन विषयों को सरल करने वाले (देवानां) विद्वानों का (रातिः) विद्या आदि पदार्थों का दान (नः) हम लोगों को (अभि निवर्तताम्) सब ओर से सिद्ध करे, सब गुणों से पूर्ण करे। (वयं) हम लोग (देवानां) विद्वानों की (सख्यं) मित्रता को (उपसेदिम) अच्छे प्रकार पावें (देवाः) विद्वान् (नः) हमको (जीवसे) जीने के लिये (आयुः) आयु (प्रतिरन्तु) पूरी भुगावें।

भावार्थ—सब मनुष्यों को चाहिये कि पूर्ण शास्त्रवेत्ता

विद्वानों के समीप से उत्तम बुद्धियों को पाकर ब्रह्मचर्य आश्रम से आयु को बढ़ा के सदैव धार्मिक जनों के साथ मित्रता रखें ।२५

तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियञ्जिन्वमवसे हूमहे वयम् । पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥२६॥ यजु० २५।१८॥

शब्दार्थ—(वयम्) हम लोग (अवसे) रक्षा आदि के लिये (जगतः) चर और (तस्थुषः) अचर जगत् के (पति) रक्षक (धियं जिन्वम्) बुद्धि को तृप्त वा शुद्ध करने वाले (तं) उस अखण्ड (ईशानम्) सबको वश में रखने वाले सब के स्वामी परमात्मा की (हूमहे) स्तुति करते हैं । यथा जैसे (नः) हमारे (वेदसाम्) धनों की (वृधे) बृद्धि के लिये (पूषा) पुष्टिकर्ता तथा (रक्षिता) रक्षा करने हारा (पायुः) सबका रक्षक (अदब्ध) नहीं मारने वाला (स्वस्तये) सुख के लिये (असत्) होवे, वैसे तुम लोग भी उसकी स्तुति करो ।

भावार्थ—सब विद्वान् लोग सब मनुष्यों के प्रति ऐसा उपदेश करें कि जिससे सर्व शक्तिमान्, निराकार सर्वत्र व्यापक परमेश्वर की उपासना हम लोग करें तथा उसी को सुख और ऐश्वर्य का बढ़ाने वाला जानें, उसी की उपासना तुम लोग भी करो, और उसी को सब की उन्नति करने वाला जानो ॥२६॥

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः । स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥२७॥ यजु० २५।१९॥

शब्दार्थ—(वृद्धश्रवा) बहुत सुनने वाला (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान् ईश्वर (नः) हमारे लिये (स्वस्ति) उत्तम सुख को धारण करे। (विश्ववेदाः) समस्त जगत में वेद रूपी धन वाला (पूषा) सबका पुष्टि करने वाला (नः) हम लोगों के लिये (स्वस्ति) सुख को धारण करे। (तार्क्ष्यः) अश्व के समान (अरिष्टनेमिः) सुखों की प्राप्ति कराने वाला (नः) हम लोगों के लिये (स्वस्ति) उत्तम सुखको धारण करे। (बृहस्पतिः) महत्तत्वादि का स्वामी वा पालना करने वाला परमेश्वर (नः) हमारे लिये (स्वस्ति) उत्तम सुख को (दधातु) धारण करे।

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि जैसे अपने सुख को चाहें वैसे और के लिये भी चाहें। जैसे कोई भी अपने लिये दुःख नहीं चाहता वैसे और के लिये भी न चाहें ॥२७॥

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः। स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाँसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥२८॥ यजु० २५।२१॥

शब्दार्थ—(हे यजत्राः) संग कराने योग्य (देवाः) विद्वानो! (कर्णेभिः) कानों से (भद्रम्) जिससे सत्यता जानी जावे उस वचन को (शृणुयाम) हम सुनें। (अक्षभिः) आंखों से (भद्रम्) कल्याण को (पश्येम) देखें। (स्थिरैः) दृढ़ (अंगैः) अंगों से (तुष्टुवांसः) स्तुति करते हुये (तनूभिः) शरीरों से (यत्) जो (देवहितम्) विद्वानों के लिये सुख करने हारी

(आयुः) आय है, उसको (वि, अशेमहि) अच्छे प्रकार प्राप्त हों।

भावार्थ—जो मनुष्य विद्वानों के साथ से विद्वान् होकर सत्य सुनें सत्य देखें और जगदीश्वर की स्तुति करें, तो वे बहुत अवस्था वाले हों। मनुष्यों को चाहिये कि असत्य का सुनना, खोटा देखना, झूठी स्तुति, प्रार्थना और प्रशंसा कभी न करें।२८।

अग्न आयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये। निहोता सत्सि बर्हिषि ॥२६॥ साम पू० १।१।१॥

शब्दार्थ—(अग्ने) हे स्वप्रकाशस्वरूप परमात्मन्! (बर्हिषि) हमारे ज्ञानयज्ञरूप ध्यान में (आयाहि) प्राप्त होवें (गृणानः) आप स्तुति किये हुये हैं (होता) आप होता [दाता] हैं (वीतये) प्रकाश करने के लिये और (हव्यदातये) यज्ञ का फल देने के लिये (निसत्सि) विराजो ॥२६॥

भावार्थ—प्रभो! हमारी स्तुति प्रार्थना को स्वीकार करो और कृपा करो कि हम सदा आपको अपने हृदय में अनुभव करें।

त्वमग्ने यज्ञाना होता विश्वेषां हितः देवेभिर्मानुषे जने ॥३०॥ साम० पू० १।१।२॥

शब्दार्थ—(अग्ने) हे ज्ञानस्वरूप प्रभो! आप (विश्वेषां (यज्ञानां) सब यज्ञों के (होता) ग्रहण करने वाले हैं, आप (देवेभिः) विद्वानों से (मानुषे जने) मनुष्य वर्ग में (हितः) धारण किये जाते हैं।

भावार्थ—प्रभो ! सब यज्ञ आपके निमित्त ही किये जाते हैं, सब विद्वान् लोग आपकी स्तुति का गान करते हैं ।३०॥

ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः । वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे ॥३१॥

अथर्व० १।१।१॥

शब्दार्थ—(ये) जो (त्रिषप्ताः) तीन-सात (विश्वाः) विश्वानि=सब (रूपाणि) रूपों को बिभ्रतः) धारण करते हुये (परियन्ति) सब ओर व्याप्त-प्राप्त हैं (तेषां) उनके (बला) बलानि=बलों को (वाचस्पतिः) वेदवाणी का पति परमात्मा (अद्य) वर्तमानकाल में (मे) मेरे (तन्वा) शरीर में वा आत्मा में (दधातु) धारण करे ।

भावार्थ—इस मन्त्र में 'त्रिसप्ता' शब्द का भाव विद्वान् लोग भिन्न २ बताते हैं—

(१) ५ महाभूत, ५ प्राण, ५ ज्ञानेन्द्रियाँ, ५ कर्मेन्द्रियाँ, १ अन्तःकरण ।

(२) त्रि=ज्ञान, कर्म, उपासना ये तीनों सप्ता=सात छन्दों में—गायत्री, उष्णिक्, बृहती, अनुष्टुप्, पंक्ति, त्रिष्टुप, जगती । वेद के तीनों काण्ड इन सात छन्दों में ।

(३) सात त्रिक—३ गुण-सत्व, रज, तम । ३ काल ३ लोक, ३ विद्यायें, ३ अवस्थायें— जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति । ३ शरीर और धाम । इत्यादि । शेष अर्थ स्पष्ट है ॥३१॥

इति स्वस्तिवाचनम् ॥

—:❋०❋:—

अथ शान्तिप्रकरणम्

—ꕥ×ꕥ—

ओं शन्न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शन्न इन्द्रावरुणा रातहव्या। शमिन्द्रासोमा सुविताय शं योः शन्न इन्द्रा-पूषणा वाजसातौ ॥१॥ ऋ० ७।३५।१॥

शब्दार्थ—हे जगदीश्वर! वाजसातौ) संग्राम में (सुविताय) ऐश्वर्य होने के लिये (नः) हम को (अवोभिः) रक्षा आदि के साथ (इन्द्राग्नी) बिजुली और साधारण अग्नि (शम्) सुख करने वाले हों, (रातहव्या) ग्रहण करने योग्य वस्तु जिन्होंने दी है ऐसे (इन्द्रावरुणा) बिजुली और जल (नः) हमारे लिये शम्) सुख करने वाले हों, (इन्द्रा सोमा) बिजुली और औषधि गण (शम्) सुख कारक हों, (योः) सुख के निमित्त (इन्द्रापूषणा) बिजुली और वायु (नः) हमारे लिये (शम्) आनन्द देने वाले (भवताम्) हों।

भावार्थ—हे जगदीश्वर! आपकी कृपा से, विद्वानों के संग से और अपने पुरुषार्थ से आपकी रची हुई सृष्टि में वर्तमान बिजुली आदि पदार्थों से हम लोग उपकार करना कराना चाहते हैं, सो यह हम लोगों का प्रयत्न सफल हो ॥१॥

शं नो भगः शमु नः शंसो अस्तु शन्नः पुरन्धिः शमु शन्तु रायः। शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शं नो अर्य्यमा पुरुजातो अस्तु ॥२॥ ऋ० ७।३५।२॥

शब्दार्थ—(नः) हमारे लिये (भगः) ऐश्वर्य (शम्) सुख करने वाला हो, (नः) हमारे लिये (शंसः) शिक्षा वा प्रशंसा (शम्) सुख करने वाली हो, (उ) और (पुरन्धिः) आकाश जिसमें कि बहुत पदार्थ रखे जाते हैं (शम्) सुख करने वाला (अस्तु) हो। (नः) हम लोगों के लिये (रायः) धन (शम) सुख करने वाले (उ) ही (सन्तु) हों, (नः) हम लोगों के लिये (सत्यस्य) यथार्थ धर्म वा परमेश्वर की (सुयमस्य) सुन्दर नियम से प्राप्त करने योग्य व्यवहार की (शंसः) प्रशंसा (शम्)सुख देने वाली हो और (पुरुजातः) बहुत मनुष्यों में प्रसिद्ध (अर्यमा) न्यायकारी (नः) हमारे लिये (शम्) आनन्द देने वाला (अस्तु) होवे।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम जैसे ऐश्वर्य, पुण्यकीर्ति, अवकाश धन, धर्म, योग और न्यायाधीश सुख करने वाले हों, वैसा अनुष्ठान करो ॥२॥

शं नो धाता शमु धर्त्ता नो अस्तु शं न उरूचो भवतु स्वधाभिः। शं रोदसी बृहती शं नो अद्रिः शं नो देवानां सुहवानि सन्तु ॥३॥ ऋ० ७।३५।३॥

शब्दार्थ—हे जगदीश्वर ! आप की कृपा से (नः) हम लोगों के लिये (धर्ता) धारण करने वाला (शम्) सुख रूप हो (उ) और (धर्ता) पुष्टि करने वाला (नः) हम लोगों के लिये (शम्) सुख रूप (अस्तु) हो। (स्वधाभिः) अन्नादिकों

के साथ (उरूची) जो बहुत पदार्थों को प्राप्त होती है वह पृथिवी (नः) हम लोगों के लिये (शम्) सुख देने वाली (भवतु) हो। (बृहती) महान् (रोदसी) द्यु और अन्तरिक्ष हमारे लिये (शम्) सुख कारक हों। (नः) हम लोगों के लिये (देवानाम्) विद्वानों के (सुहवानि) सुन्दर आवाहन, प्रशंसा से बुलावे (शम्) सुख रूप (सन्तु) हों।

भावार्थ—जो मनुष्य पुष्टि करने वालों से उपकार लेना जानते हैं वे सब सुखों को पाते हैं ॥ ३ ॥

शन्ना अग्निर्ज्योतिरनीका अस्तु शन्नो मित्रावरुणा-वश्विना शम् । शं नः सुकृतां सुकृतानि सन्तु शं न इषिरो अभिवातु वातः ॥४॥ ऋ० ७।३५।४॥

शब्दार्थ—हे जगदीश्वर ! आप की कृपा से (ज्योतिरनीकः) ज्योति ही है सेना के समान जिस की (अग्निः) वह अग्नि (नः) हम लोगों के लिये (शम्) सुख रूप (अस्तु) हो। (अश्विना) अध्यापक और उपदेशक (शम्) सुख रूप हों और (मित्रा-वरुणौ) प्राण और उदान (नः) हमारे लिये (शम्) सुख रूप होवें। (नः) हमारे लिये (सुकृताम्) सुन्दर धर्म करने वालों के (सुकृतानि) धर्माचरण (शम्) सुख रूप (सन्तु) हों और (इषिरः) शीघ्र जाने वाला (वातः) वायु (नः) हम लोगों के लिये (शम्) सुख रूप (अभि, वातु) सब ओर से बहे।

भावार्थ—जो अग्नि और वायु पदार्थों से कार्यों को सिद्ध करते हैं वे ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

शन्नो द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ शमन्तरिक्षं दृशये नो अस्तु। शं न ओषधीर्वनिनो भवन्तु शं नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णुः ॥५॥ ऋ० ७।३५।५॥

शब्दार्थ—हे जगदीश्वर! आप की कृपा से (पूर्वहूतौ) जिस में वा जिस से पूर्वपुरुषों की प्रशंसा होती है उस क्रिया में (द्यावापृथिवी) बिजुली और भूमि (नः) हम लोगों के लिये (शम्) सुखप्रद हो। (दृशये) देखने को वा ज्ञान सम्पति के लिये (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष (नः) हम लोगों के लिये (शम्) सुख रूप (अस्तु) हो और (ओषधीः) ओषधि, (वनिनः) [वन जिन में विद्यमान हैं वे] वृक्ष (नः) हमारे लिये (शम्) सुखरूप (भवन्तु) होवें। (रजसः) लोकों में उत्पन्न हुये का (पतिः) स्वामी (जिष्णुः) जयशील [महापुरुष] (नः) हमारे लिये (शम्) सुखरूप (अस्तु) हो।

भावार्थ—जो सृष्टि सब पदार्थों को सुख के लिये संयुक्त करने में योग्य होते हैं, वे ही उत्तम विद्वान् होते हैं ॥ ५ ॥

शन्न इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु शमादित्येभिर्वरुणः सुशंसः। शं नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः शं नस्त्वष्टाग्नाभिरिह श्रृणोतु ॥६॥ ऋ० ७।३५।६॥

शब्दार्थ—हे जगदीश्वर आप की सहायता से (इह) यहां (वसुभिः) पृथिव्यादिकों के साथ (देवः) दिव्यगुण कर्म स्वभावयुक्त (इन्द्रः) विजुली वा सूर्य (नः) हम लोगों के लिये

(शम्) सुखरूप हो और (आदित्येभिः) साल के महीनों के साथ (सुशंसः) अच्छी प्रशंसा करने योग्य (वरुणः) जल-समुदाय (नः) हम लोगों के लिये (शम्) सुखरूप (अस्तु) हो। (रुद्रेभिः) जीव वा प्राणों के साथ (जलाषः) दुःख निवारण करने वाला (रुद्रः) परमात्मा वा जीव (नः) हम लोगों के लिये (शम्) सुखरूप हो (ग्नाभिः) वाणियों के साथ (त्वष्टा) सब वस्तुओं का निर्माता और विच्छेद करने वाला अग्नि के समान परीक्षक विद्वान् (नः) हम लोगों के लिये (शम्) सुख (शृणोतु) सुने।

भावार्थ—जो पृथिवी, आदित्य और वायु की विद्या से ईश्वर, जीव और प्राणों को जान, यहां इनकी विद्या को पढ़ा, परीक्षा कर, सब को विद्वान् और उद्योगी करते हैं वे इस संसार में सब प्रकार के ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं॥ ६॥

शं नः सोमो भवतु ब्रह्म शं नः शं नो ग्रावाणः शमु सन्तु यज्ञाः। शं नः स्वरूणां मितयो भवन्तु शं नः प्रस्वः शम्वस्तु वेदिः॥७॥ ऋ० ७।३५।७॥

शब्दार्थ—हे जगदीश्वर! आपकी कृपा से (सोमः) चन्द्रमा (नः) हमारे लिये (शम्) सुखरूप (भवतु) हो, (ब्रह्म) धन वा अन्न (नः) हमारे लिये (शम्) सुखरूप (सन्तु) हों (यज्ञाः) अग्नि होत्र से लेकर शिल्प यज्ञ तक (नः) हम लोगों के लिये (शम्, उ) सुखरूप ही हों। (स्वरूणाम्) यज्ञशाला

के स्तम्भो के (मितयः) परिमाण (नः) हमारे लिये (शम्) सुखरूप (भवन्तु) हों। (प्रस्वः) उत्पन्न होने वाली ओषधियें (नः) हमारे लिये (शम्) सुखरूप हों और (वेदिः) यज्ञवेदी आदि (नः) हमारे लिये (शम्, उ) सुख देने वाली ही (अस्तु) हों।

भावार्थ—जो मनुष्य विद्या, ओषधि धन और यज्ञादि से जगत् का सुख के साथ उपकार करते हैं, वे अतुल सुख पाते हैं ॥ ७ ॥

शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नश्चतस्रः प्रदिशा भवन्तु। शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः ॥८॥ ऋ० ७।३५।८॥

शब्दार्थ—हे परमेश्वर ! (उरुचक्षाः) जिस से बहुत दर्शन होते है वह (सूर्यः) सूर्य (नः) हम लोगों के लिये (शम्) सुखरूप (उदेतु) उदय हो। (चतस्रः) चार (प्रदिशः) पूर्वादि वा ऐशानी आदि दिशा वा विदिशा (नः) हम लोगों के लिये (शम्) सुख रूप (भवन्तु) हों। (ध्रुवयः) अपने २ स्थान में स्थिर (पर्वतः) पर्वत (नः) हम लोगों के लिये (शम्) सुखरूप (भवन्तु) होवें। (सिन्धवः) नदी वा समुद्र (नः हम लोगों के लिये (शम्) सुख रूप हों और (आपः) जल वा प्राण (शम्) सुख रूप (उ) ही (सन्तु) हों।

भावार्थ—जो जगदीश्वर के बनाये हुये सूर्यादिकों से उपकार ले सकते हैं, वे इस जगत् में श्री, राज्य और अच्छी कीर्त्ति वाले होते हैं ॥ ८ ॥

शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु मरुतः स्वर्काः शं नो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः ।९॥ ऋ० ७।३५।९॥

शब्दार्थ–(अदितिः) विदुषी माता (व्रतेभिः) अच्छे कामों के साथ (नः) हम लोगों को (शम्) सुख रूप (भवतु) हो और (स्वर्काः) सुन्दर विचारों वाले (मरुतः) प्राणों के समान प्रिय मनुष्य (शम्) सुख रूप (भवन्तु) होवें। (विष्णुः) व्यापक जगदीश्वर (नः) हम लोगों के लिये (शम्) सुख रूप हो। (पूषा) पुष्टि करने वाला ब्रह्मचर्यादि व्यवहार (नः) हमारे लिये (शम्) सुख रूप (उ) ही (अस्तु) हो। (भवित्रम्) होनहार काम (नः) हमारे लिये (शम्) सुख रूप होवे और (वायु) वायु (नः) हमारे लिये (शम्) सुख रूप (उ) ही (अस्तु) हो।

भावार्थ—माता आदि विदुषियों को कन्यायें और विद्वान् पिता आदि को पुत्र अच्छे प्रकार शिक्षा देने योग्य हैं, जिस से वे भूमि से ले के ईश्वर पर्यन्त पदार्थों की विद्याओं को पा के धार्मिक हो कर सब मनुष्यों को निरन्तर आनन्दित करें ॥ ९ ॥

शन्नो देवः सविता त्रायमाणः शं नो भवन्तूषसो विभातीः। शं नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शं नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शम्भुः ॥१०॥ ऋ० ७।३५।१०॥

शब्दार्थ—(त्रायमाणः) रक्षा करता हुआ (सविता)

सकल जगत् की उत्पत्ति करने वाला और (देवः) सब सुखों के देने वाला स्वप्रकाशस्वरूप ईश्वर (नः) हम लोगों के लिये (शम्) सुख रूप (भवतु)हो। (विभातीः) विशेषता से दीप्ति वाली (उषसः) प्रभात वेलायें (नः) हम लोगों के लिये (शम्) सुखरूप (भवन्तु) हों । (पर्जन्यः) मेघ (प्रजाभ्य) हम प्रजाजनों के लिये (शम्) सुखरूप (भवतु) हो, और (क्षेत्रस्य पतिः) जिसमें निवास करते हैं उस जगत् का स्वामी ईश्वर वा राजा (शम्भुः) सुख की भावना कराने वाला (नः) हमारे लिये (शम्) सुख रूप अस्तु हो।

भावार्थ—विद्वानों को वेदादि विद्याओं से परमेश्वर आदि पदार्थों के गुण कर्म स्वभाव विद्यार्थियों के प्रति यथावत् प्रकाश करने चाहियें, जिससे सबों से उपकार ले सकें ॥१०॥

शं नो देवा विश्वदेवाः भवन्तु शं सरस्वती सह धीभिरस्तु। शमभिषाचः शमु रातिषाचः शं नो दिव्याः पार्थिवाः शं नो अप्याः ॥११॥ ऋ० ७।३५।११॥

शब्दार्थ—(देवः) विद्यादि शुभ गुणों के देने वाले (विश्वदेवाः) सब विद्वान् जन (नः) हम लोगों के लिये (शम्) सुख रूप (भवन्तु) होवें (सरस्वती) विद्या और सुशिक्षायुक्त वाणी (धीभिः) उत्तम बुद्धियों के (सह) साथ (नः) हम लोगों के लिये (शम्) सुख रूप (अस्तु) हो । (अभिषाचः) आत्मदर्शी योगी [वा विद्यादि दान देने वाले] (नः) हम लोगों के लिये (शम्) सुख रूप हों और (रातिषाचः) विद्यादि

दान का सेवन करने वाले हम लोगों के लिये (शम्) सुख रूप (उ) ही हों तथा (दिव्याः) शुभ गुण कर्म स्वभाव युक्त (पार्थिवाः) पृथिवी के राजा लोग वा बहुमूल्य पदार्थ (शम्) सुख रूप [हों] और (अप्याः) पानी में रहने वाले, नौका आदि से जाने वाले जलों में उत्पन्न हुये मोती आदि (शम्) सुख रूप हों।

भावार्थ—मनुष्यों को ऐसा आचार करना चाहिये जिस से सब विद्वान् जन सुन्दर बुद्धि और वाणी, विद्या देने वाले योगी जन, राजा और शिल्पी जन तथा दिव्य पदार्थ प्राप्त हों ॥ ११ ॥

शं नः सत्यस्य पतयो भवन्तु शं नो अर्वन्तः शमु सन्तु गावः। शं नः ऋभवः सुकृतः सुहस्ता शं नो भवन्तु पितरो हवेषु ॥१२॥ ऋ० ७।३५।१२॥

शब्दार्थ—हे जगदीश्वर ! (हवेषु) हवन आदि अच्छे कामों में (सत्यस्य) सत्य भाषण आदि व्यवहार के (पतयः) पालन करने वाले (नः) हम लोगों के लिये (शम्) सुखरूप (भवन्तु) होवें। (अर्वन्तः) उत्तम घोड़े (नः) हमारे लिये (शम्) सुखरूप होवें। (गावः) गौएं (नः) हमारे लिये (शम्) सुखरूप (उ) ही (सन्तु) हों। (सुहस्ताः) अच्छे काम में हाथ डालने वाले (ऋभवः) बुद्धिमान् (सुकृताः) धर्मात्मा (नः) हम लोगों के लिये (शम्) सुखरूप हों। (पितरः) पितृ जन [बुजुर्ग] नः) हम लोगों के लिये (शम्) सुख रूप (भवन्तु) होवें।

भावार्थ—मनुष्यों को ऐसे शील की धारणा करनी चाहिये, जिस से आप्त सज्जन प्रसन्न हों, जिन की प्रीति से सब पशु और विद्वान् पितृजन प्रसन्न और सुख करने वाले हों ॥ १२ ।

शं नो अज एकपाद् देवो अस्तु शं नोऽहिर्बुध्न्यः शं समुद्रः । शं नो अपां नपात्पेरुरस्तु शं नः पृश्निर्भवतु देवगोपाः ॥१३॥ ऋ० ७।३५।१३॥

शब्दार्थ—(नः) हमारे लिये (अजः) कभी न उत्पन्न होने वाला (एक पात्) जिस के पाद में सब जगत् विद्यमान है वह (देवः) सब सुखों के देने वाला जगदीश्वर (शम्) सुख रूप (अस्तु) हो । (बुध्न्यः) अन्तरिक्ष में होने वाला (अहिः) मेघ (नः) हम लोगों के लिये (शम्) सुख रूप हो (समुद्रः) समुद्र (नः) हमलोगों के लिये (शम्) सुख रूप हो । (अपाम् जलों की (पेरुः) पार करने वाली (नपात्) नौका (नः) हम लोगों के लिये (शम्) सुख रूप (अस्तु) हो । (देव गोपाः) सबकी रक्षा करने वाला (पृश्निः) अन्तरिक्ष [हम लोगों के लिये] (शम्) सुख रूप (भवतु) हो ।

भावार्थ—हे अध्यापक और उपदेशको ! तुम हम लोगों को जन्म मरणादि दोष रहित ईश्वर, मेघ, समुद्र और नौका की विद्या का ग्रहण कराओ जिससे हम लोग सबके रक्षक हों ॥१३॥

इन्द्रो विश्वस्य राजति । शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ १४ ॥ यजु० ३६।८॥

शब्दार्थ—(इन्द्रः) बिजुली के तुल्य ईश्वर (विश्वस्य) संसार में (राजति) प्रकाशमान है। उसकी कृपा से (नः) (हमारे द्विपदे) पुत्रादिके लिये (शम्) सुख (अस्तु) हो और हमारे (चतुष्पदे) गौ आदि के लिये (शम्) सुख होवे।

भावार्थ—हे जगदीश्वर ! जिससे आप सर्वत्र सब ओर से अभिव्याप्त मनुष्य पश्वादि को सुख चाहने वाले हैं, इससे सबको उपासना करने योग्य हैं ॥१४॥

शं नो वातः पवताँ शं नस्तपतु सूर्य्यः। शं नः कनिक्रदद्देवः पर्जन्यो अभिवर्षतु ॥ १५ ॥यजु० ३६।१०॥

शब्दार्थ—(वातः) पवन (नः) हमारे लिये (शम्) सुखकारी (पवताम्) चले। (सूर्यः) सूर्य (नः) हमारे लिये (शम्) सुखकारी (तपतु) तपै। [कनिक्रदत् अत्यन्त शब्द करता हुआ (देवः) उत्तम गुणयुक्त विद्युत रूप अग्नि (नः) हमारे लिये (शम्) कल्याणकारी हो और (पर्जन्यः) मेघ हमारे लिये (अभिवर्षतु) सब ओर से वर्षे।

भावार्थ - हे मनुष्यो ! जिस प्रकार से वायु, सूर्य, बिजुली और मेघ सब को सुखकारी हों वैसा अनुष्ठान किया करो ॥१५॥

अहानि शं भवन्तु नः शँ रात्रीः प्रतिधीयताम्। शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या। शन्न इन्द्रापूषणा वाजसातौ शमिन्द्रासोमा सुविताय शंयोः ॥ १६ ॥ यजु० ३६।११॥

शब्दार्थ—हे परमेश्वर ! (अवोभिः) रक्षा आदि के साथ (शं योः) सुख की (सुविताय) प्रेरणा के लिये (नः) हमारे लिये (अहानि) दिन (शम्) सुखकारी (भवन्तु) हों। (रात्री) रातें (शमु) कल्याण के (प्रति) प्रति (धीयताम्) हम को धारण करें, (इन्द्राग्नी) बिजुली और प्रत्यक्ष अग्नि (नः) हमारे लिये (शम्) सुखकारी हों, रातहव्या ग्रहण करने योग्य सुख जिन से प्राप्त होवे वे (इन्द्रावरुणा) विद्युत और जल (नः) हमारे लिये शम् सुखकारी हों। (वाजसातौ अन्नों के सेवन के हेतु संग्राम में (इन्द्रापूषणा) विद्युत और पृथिवी (नः) हमारे लिये (शम्) सुखकारी होव और (इन्द्रासोमा) बिजुली और ओषधियें (शम्) सुखकारिणी हों।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो ईश्वर और आप्त सत्यवादी विद्वान् लोगों की शिक्षा में आप लोग प्रवृत्त रहो तो दिन रात तुम्हारे भूमि आदि सब पदार्थ सुखकारी होवें ॥ १६ ॥

शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शंयोर-भिस्रवन्तु नः ॥ १७ ॥ यजु० ३६।१२॥

शब्दार्थ—(अभिष्टये) इष्ट सुख की सिद्धि के लिये (पीतये) पीने के अर्थ (देवीः) दिव्य उत्तम (आपः) जल (नः) हम को (शम्) सुखकारी (भवन्तु) होवें। (नः) हमारे लिये (शंयोः) सुख की वृष्टि (अभिस्रवन्तु) सब ओर से करें। दूसरा अर्थ—इस मन्त्र में 'आपः' शब्द का अर्थ सर्व-व्यापक परमात्मा भी है। इस लिये मन्त्र का अर्थ यह है—

सर्वव्यापक परमात्मा चाही हुई पूर्ण] तृप्ति के लिये हमें सुख देने वाला हो और सुख और अभय की हमारे सब ओर वर्षा करे।

भावार्थ—जो मनुष्य यज्ञादि से जलादि पदार्थों को शुद्ध सेवन करते हैं, उन पर सुख रूप अमृत की वर्षा निरन्तर होती है ॥ १७ ॥

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षँ शान्तिः, पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्ति। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः, सर्वँ शान्तिः, शान्तिरेव शान्तिः, सा मा शान्तिरेधि ॥१८॥

यजु० ३६।१७॥

शब्दार्थ—(द्यौः) द्यु लोक (शान्तिः) शान्ति कारक हो। (अन्तरिक्षं) अन्तरिक्ष (शांति शान्तिप्रद हो। (पृथिवी शांति) पृथिवी सुखकारी निरुपद्रव हो। (आपः) जल वा प्राण (शान्तिः) शान्तिदायी हों। (ओषधयः) सोमलता आदि ओषधियें (शान्तिः) सुखदायी हों। (वनस्पतयः) वट आदि वनस्पतियें (शांतिः) शांति कारक हों। (विश्वेदेवाः) सब विद्वान् लोग (शांतिः) उपद्रव निवारक हों। (ब्रह्म) परमेश्वर वा वेद (शांतिः) सुखदायी (सर्वम्) सब वस्तुएं (शांतिरेव) शांति ही (शांति) शांति देने वाली हों। (सा) वह [शांति] शान्ति (मा) मुझको (एधि) प्राप्त होवे।

भावार्थ—हे मनुष्यो! जैसे आकाश आदि पदार्थ शान्ति करने वाले होवें, वैसे तुम लोग प्रयत्न करो ॥१८॥

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतँ श्रृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥ १६ ॥ यजु० ३६।२४॥

शब्दार्थ—हे परमेश्वर! आप (देवहितम) विद्वानों के लिये हितकारी (शुक्रम) शुद्ध (चक्षुः नेत्र के तुल्य सबके दिखाने वाले (पुरस्तात) पूर्वकाल अर्थात् अनादि काल से (उत्, चरत्) उत्कृष्टता के साथ सबके ज्ञाता हैं (तद्) उस चेतन ब्रह्म आपको (शतम्, शरदः) सौ वर्ष तक (पश्येम) देखें, (शतं शरदः) सौ वर्ष पर्यन्त (जीवेम प्राणों को धारण करें, जीवें (शतम्, शरदः) सौ वर्ष तक (श्रृणुयाम) शास्त्रों वा मंगल वचनों को सुनें, (शत, शरदः) सौ वर्ष पर्यन्त (प्रब्रवाम) पढ़ावें वा उपदेश करें। (शतं, शरदः) सौ वर्ष पर्यन्त (अदीनाः) दीनता रहित (स्याम) हों, (च) और (शतात्, शरदः) सौ वर्ष से (भूयः) अधिक भी, देखें, सुनें, पढ़ें, उपदेश करें और अदीन रहें।

भावार्थ—हे परमेश्वर! आप की कृपा और आप के विज्ञान से आप की रचना को देखते हुये आप से युक्त नीरोग और सावधान हुये हम लोग समस्त इन्द्रियों से युक्त सौ वर्ष से भी अधिक जीवें, सत्य शास्त्रों और आप के गुणों को सुन, वेदादि को पढ़ें पढ़ावें, सत्य का उपदेश करें, कभी किसी वस्तु के बिना पराधीन न हों, सदैव स्वतन्त्र हुये निरन्तर आनन्द भोगें और दूसरों को आनन्दित करें ॥१६॥

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवेति ।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योति रेकन्तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥
यजु० ३४।१॥

शब्दार्थ—(यत्) जो (दैवं) आत्मा का साधन और (दूरङ्गमम्) दूर जाने, मनुष्य को दूर तक लेजाने वाला (ज्योतिषां) शब्द आदि विषयों के प्रकाशक श्रोत्रादि इन्द्रियों को (ज्योतिः) प्रवृत करने हारा (एकं) एक (जाग्रतः) जागृत अवस्था में (दूरं) दूर २ (उत एति) भागता है (उ) और (तत्) जो (सुप्तस्य) सोते हुये का (तथा, एव) उस प्रकार (एति) भीतर अन्तः कारण में जाता है (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) सङ्कल्प विकल्पात्मक मन (शिव सङ्कल्पं) कल्याण कारी, धर्म विषयक इच्छा वाला (अस्तु) हो ।

भावार्थ—जो मनुष्य परमेश्वर की आज्ञा का सेवन और विद्वानों का सङ्ग करके अनेक विध सामर्थ्ययुक्त मन को शुद्ध करते हैं, जो जागृतावस्था में विस्तृत व्यवहार वाला वही मन सुषुप्ति अवस्था में शान्त होता है। जो वेग वाले पदार्थों में अति वेगवान, ज्ञान के साधन होने से इन्द्रियों के प्रवर्तक मनको वश में करते हैं, वे अशुभ व्यवहार को छोड़ शुभ व्यवहार में मन को प्रवृत कर सकते हैं ॥२०॥

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः ।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥
यजु० ३४।२॥

शब्दार्थ—(येन) जिस से (अपसः) सदाकर्म धर्मनिष्ठ (मनीषिणः) मन का दमन करने वाले (धीराः) ध्यान करने वाले बुद्धिमान् लोग (यज्ञे) अग्निहोत्र आदि वा धर्मसंयुक्त व्यवहार वा योग यज्ञ में और (विदथेषु) विज्ञान सम्बन्धी और युद्धादि व्यवहारों में (कर्माणि) अत्यन्त इष्ट कर्मों को (कृण्वन्ति) करते हैं (यत्) जो (अपूर्वम) सर्वोत्तम् गुण कर्म स्वभाव वाला (प्रजानां) प्राणिमात्र के (अन्तः) हृदय में (यज्ञं) पूजनीय (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) मन (शिवसङ्कल्पं) धर्मेष्ट (अस्तु) होवे ।

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि परमेश्वर की उपासना, सुन्दर विचार, विद्या और सत्संग से अपने अन्तःकरण को अधर्माचरण से निवृत कर धर्म के आचरण में प्रवृत्त करें ॥२१॥

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृत प्रजासु । यस्मान्न ऋते किञ्चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ २२ ॥ यजु० ३४।३॥

शब्दार्थ—हे जगदीश्वर ! आपके जताने से (यत्) जो (प्रज्ञानं) विशेष कर ज्ञान का उत्पादक बुद्धिरूप (च) और लज्जा आदि कर्मों का हेतु (उत) भी (चेतः) स्मृति का साधन (धृतिः) धैर्यस्वरूप (प्रजासु) मनुष्यों में (अन्तः) अन्तःकरण में आत्मा का साथी होने से (अमृतम्) नाश रहित (ज्योतिः) प्रकाश स्वरूप (यस्मात्) जिससे (ऋते) विना (किम् , चन) कोई भी (कर्म) काम (न, क्रियते) नहीं किया जाता (तत) वह (मे) मेरा (मनः) मन (शिवसङ्कल्पम्) कल्याणकारी परमात्मा में इच्छा रखने वाला (अस्तु) हो ।

भावार्थ– हे मनुष्यो! जो अन्तःकरण, बुद्धि, चित् और अहङ्कार रूप वृत्ति वाला होने से चार प्रकार से भीतर प्रकाश करने वाला प्राणियों के सब कर्मों का साधक अविनाशी मन है उसको न्याय और सत्य आचरण में प्रवृत्त कर पक्षपात अन्याय और अधर्माचरण से तुम लोग निवृत्त करो ॥२२॥

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम् । येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मेमनः शिवसङ्कल्पमस्तु ।२३।

शब्दार्थ हे मनुष्यो! (येन) जिस (अमृतेन) परमात्मा के साथ युक्त होने वाले मन से (भूतम्) व्यतीत हुआ (भुवनम्) वर्तमान काल सम्बन्धी और (भविष्यत्) होने वाल (सर्वम्, इदम्) यह सब वस्तुमात्र (परिगृहीतम सब ओर से गृहीत होता अर्थात् जाना जाता है। जिससे (सप्त होता) सात मनुष्य होता वा पांच प्राण छटा जीवात्मा और अव्यक्त सातवां ये सात लेने देने वाले जिसमें हों वह (यज्ञः) अग्टोमादि वा विज्ञानरूप व्यवहार (तायते) विस्तृत किया जाता ह (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) योग युक्त चित्त (शिवसङ्कल्पम) मोक्ष रूप सङ्कल्प वाला (अस्तु) हावे।

भावार्थ—हे मनुष्यो! जो चित्त योगाभ्यास के साधन और उपसानों स सिद्ध हुआ भूत, भविष्तत्, वतमान तीनों काल का ज्ञाता, सब सृष्टि का जानने वाला कर्म, उपासना और ज्ञान का साधक है, उसको सदा ही कल्याण में प्रिय करो ॥२३॥

यस्मिन्नृचः सामयजूँषि यस्मिन्प्रतिष्ठिता रथनाभा विवाराः। यस्मिश्चित्तँ सर्वमोत प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥२४॥ यजु० ३४।५॥

शब्दार्थ—(यस्मिन्) जिस मन में (रथनाभी इव अरा) जैसे रथ के पहिये के बीच के काष्ट में अरा लगे होते हैं, वैसे (ऋचः) ऋग्वेद (साम) सामवेद (यजूंषि) यजुर्वेद प्रतिष्ठिता) सब ओर से स्थित हैं (यस्मिन्) जिसमें (प्रजानाम्) प्राणियों का (सर्वम) समग्र (चित्तम्) सब पदार्थ सम्बन्धी ज्ञान (ओतम्) सूत में मणियों के समान संयुक्त है (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) मन (शिवसङ्कल्पम्) कल्याणारी वेदादि सत्य शास्त्रों का प्रचाररूप सङ्कल्प वाला (अस्तु) हो ।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोगों को चाहिये कि जिस मन के स्वस्थ रहने में ही वेदादि विद्याओं का आधार और जिस में सब व्यवहारों का ज्ञान एकत्र होता है उस अन्तःकरण को विद्या और धर्म के आचरण से पवित्र करो ॥ २४ ॥

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव । हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥
यजु० ३४।६॥

शब्दार्थ—(यत्) जो मन (सुषारथिः) जैसे सुन्दर चतुर सारथी गाड़ीवान (अश्वानिव) लगाम से घोड़ों को सब ओर से चलाता है, वैसे (मनुष्यान्) मनुष्य आदि प्राणियों को (नेनीयते) शीघ्र २ इधर उधर घुमाता है और (अभीशुभिः) जैसे रस्सियों से (वाजिनः) घोड़ों को [सारथि वश में रखता है] (यत्) जो (हृत्प्रतिष्ठम्) हृदय में स्थित (अजिरम्) विषयादि में प्रेरक वा वृद्धावस्था रहित और (जविष्ठम्)

अत्यन्त वेगवान् है (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) मन (शिवशङ्कल्पम्) मङ्गलमय नियम में स्थित (अस्तु) होवे।

भावार्थ—जो मनुष्य जिस पदार्थ में आसक्त है वही बल से सारथि घोडे को जैसे, वैसे प्राणियों को ले जाता और लगाम से सारथि घोड़ों को जैसे, वैसे वश में रखता, सब मूर्खजन जिस के अनुकूल वर्तते और विद्वान् अपने वश में करते हैं जो शुद्ध हुआ सुखकारी और अशुद्ध हुआ दुःखदायी जो जीता हुआ सिद्धि को और न जीता हुआ असिद्धि को देता है, वह मन मनुष्यों को अपने वश में रखना चाहिये ॥ २५ ॥

स नः पवस्व शङ्गवे शं जनाय शमर्वते। शं राजन्नोषधीभ्यः ॥२६॥ साम० २। ११॥

शब्दार्थ—(राजन्) हे स्वप्रकाशस्वरूप प्रभो! (स नः) वह आप हमारे (गवे शं पवस्व) गौ आदि पशुओं के लिये सुख की वर्षा करो, (शं जनाय) और मनुष्य समूह के लिये सुख हो। (अर्वते शम्) हमारे प्राण के लिये सुख हो और (ओषधीभ्यः शम्) ओषधियों के उगने और पकने आदि के लिये आनुकूल्य हो।

भावार्थ—हे दीप्तिमान् प्रभो! आप हमारे गौ आदि पशुओं, मनुष्यों, हमारे प्राणों और ओषधी वर्ग के लिये सुख की वर्षा करो ॥ २६ ॥

अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे।
अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु ॥२७॥

अथर्व० १९।१५।५॥

शब्दार्थ—(नः) हमें (अन्तरिक्षम्) मध्यलोक (अभयम्) अभय (करोति) करे, (इमे) यह (उभे) दोनों (द्यावापृथिवी) द्युलोक और पृथिवी (अभयम्) अभय करें, (पश्चात्) पश्चिम में वा पीछे से (अभयम्) अभय हो, (पुरस्तात् पूर्व में वा आगे से (अभयम्) अभय हो, (उत्तरात्) उत्तर में वा ऊपर से और (अधरात्) दक्षिण में वा नीचे से (अभयम् नः अस्तु) हमारे लिये अभय हो।

भावार्थ—हमारे लिये पृथिवी, द्यु, और अन्तरिक्ष लोक भय रहित हों और आगे, पीछे, दायें, बायें, ऊपर नीचे सब ओर अभय हो ॥ २७ ॥

अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं पुरो यः।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ॥

अथर्व० १९।१५।६॥

शब्दार्थ—(मित्रात् अभयम्) मित्र से अभय, (अमित्रात्) अमित्र से (अभयम्) अभय हो (ज्ञातात्) ज्ञात से (अभयम्) अभय (यः पुरः) जो सामने है उस से भी (अभयम्) अभय हो (नः) हमारे लिये (नक्तम्) रात्रि में (अभयम्) अभय और (दिवा) दिन में (अभयम्) अभय हो। (सर्वाः) सब (आशाः) दिशायें (मम मित्र भवन्तु) मेरी मित्र हों।

भावार्थ—मित्र, अमित्र, ज्ञात, अज्ञात आदि सब से मुझे अभय हो। दिन और रात में मुझे कभी भय न हो, सब दिशाय मेरी मित्र हों ॥ २८ ॥

इति शान्ति प्रकरणम् ॥

देवयज्ञ अर्थात् हवन

—ꕥ:×:ꕥ—

प्रथम तीन मन्त्रों से तीन आचमन करें।

ओं अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा ॥१॥

अर्थ—जो (अमृत) अमृत [जल] (उपस्तरणम) नीचे का बिछौना [आश्रय भूत] (असि) है। (स्वाहा) वह हमारे लिये सत्य और शोभा युक्त हो।

ओं अमृतापिधानमसि स्वाहा ॥२॥

अर्थ—(अमृत) अमृत [जल] (अपिधानम्) ऊपर का ओढ़ना (असि) है।

ओं सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा ॥३॥

तैत्ति० प्र० १०। अनु० ३२-३५॥ मानवगृह्य सू० १।९।१५।१७।

अर्थ—(मयि) मुझ में (सत्य) सत्य (यशः) यश (श्रीः) लक्ष्मी (श्रीः) आश्रय रूप में (श्रयताम्) स्थित हों।

तत्पश्चात् इन मन्त्रों से अंग स्पर्श करें।

ओं वाङ्मआस्येऽस्तु—से मुख को ॥ १ ॥

अर्थ—मेरे मुख में बोलने की शक्ति हो ॥१॥

ओं नसोर्मे प्राणोऽस्तु—से नाक को ॥ २ ॥

अर्थ—मेरे नासिका छिद्रों में प्राणशक्ति हो ॥२॥

ओं अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु—से आँखों को ॥ ३ ॥

अर्थ—मेरी आंखों में देखने की शक्ति हो ॥३॥

ओं कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु—से कानों को ॥ ४ ॥

अर्थ—मेरे कानों में सुनने की शक्ति हो ॥४॥

ओं बाह्वोर्मे बलमस्तु—से बाहों को ॥ ५ ॥

अर्थ—मेरी भुजाओं में बल हो ॥५॥

ओं ऊर्वोर्मे ओजोऽस्तु—से दोनों जाँघों को ॥ ६ ॥

अर्थ—मेरी जङ्घाओं में ओज हो ॥६॥

ओं अरिष्टानि मेऽङ्गानि तनूस्तन्वा मे सह सन्तु ॥७॥

(पारस्कर गृह० कण्डिका ३ सूत्र २५)

से सब अङ्गों पर जल छिड़कें ॥ ७ ॥

अर्थ—मेरा शरीर और शरीर के सब अंग स्वस्थ हों ॥७॥

अब नीचे लिखे मन्त्र से कपूर जलावें।

ओं भूर्भुवः स्वः ॥ (गोभिल गृ० प्र० १ खं० १ सू० ११)

अर्थ—(भूः) प्राणों से प्रिय (भुवः) दुःखों के दूर करने वाला (स्वः) सुख स्वरूप परमात्मा।

इस मन्त्र से जलते हुये कपूर को कुण्ड में रखें।

ओं भूर्भुव स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा। तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे।

यजु० ३। ५॥

अर्थ—मैं (अन्नद्याय) खाने योग्य अन्न के लिये (भूम्ना) विभु अर्थात् ऐश्वर्य से (द्यौरिव) आकाश में सूर्य के समान (वरिम्णा) अच्छे २ गुणों से (पृथिवीव) विस्तृत भूमि के तुल्य (ते) प्रत्यक्ष वा (तस्याः) अप्रत्यक्ष अर्थात् आकाशयुक्त लोक में (देवयजनि) विद्वानों के यज्ञ का स्थान वा (पृथिवी) भूमि के (पृष्ठे) पृष्ठ के ऊपर (भूः) भूमि (भुवः) अन्तरिक्ष (स्वः) प्रकाशस्वरूप सूर्य लोक तथा (अन्नादम्) यव आदि सब अन्नों को भक्षण करने वाले (अग्नि) प्रसिद्ध अग्नि को (आदधे) स्थापन करता हूँ।

भावार्थ—हे मनुष्य लोगो ! तुम ईश्वर से तीन लोकों के उपकार करने वा अपनी व्याप्ति से सूर्य प्रकाश के समान तथा उत्तम २ गुणों से पृथिवी के समान अपने २ लोकों में निकट रहने वाले रचे हुये अग्नि को कार्य की सिद्धि के लिये यत्न के साथ उपयोग करो।

फिर नीचे लिखे मन्त्र से पंखे द्वारा आग को जलावें।

ओं उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टापूर्ते सँसृजेथामयं च। अस्मिन् सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वेदेवा यजमानश्च सीदत। यजु० १५।५४॥

अर्थ—हे (अग्ने) अच्छी विद्या से प्रकाशित स्त्री वा पुरुष तू (उद्बुध्यस्व) अच्छे प्रकार ज्ञान को प्राप्त हो। (प्रति जागृहि) सबके प्रति अविद्या रूप निद्रा को छोड़ के विद्या से चेतन हो। (त्वम्) तू स्त्री (च) और (अयम्) यह पुरुष दोनों (अस्मिन्) इस वर्तमान (सधस्थे) एक स्थान में और (उत्तरस्मिन्) आगामी समय में सदा (इष्टापूर्ते) इष्ट सुख, विद्वानों का सत्कार, ईश्वर का आराधन, अच्छा संग करना और सत्य विद्या आदि दान देना, यह इष्ट और पूर्णबल, ब्रह्मचर्य, विद्या की शोभा, पूर्ण युवा अवस्था, साधन और उपसाधन यह सब पूर्त्त इन दोनों को (सं सृजेथाम्) सिद्ध किया करो। (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (च) और (यजमानः) यज्ञ करने वाले पुरुष तू इस एक स्थान पर (अधि, सीदत) उन्नति पूर्वक स्थिर होओ।

भावार्थ—जैसे अग्नि सुगन्धादि के होम से इष्ट सुख देता और यज्ञकर्ता यज्ञ की सामग्री पूरी करता है, वैसे उत्तम विवाह किये स्त्री पुरुष इस जगत में आचरण किया करें। जब विवाह के लिये दृढ़ प्रीति वाले स्त्री पुरुष हों तब विद्वानों को बुला के उनके समीप वेदोक्त प्रतिज्ञा कर के पति और पत्नी बनें।

फिर तीन समिधा आठ २ अंगुल की घृत में डुबोकर नीचे लिखे मन्त्रों से एक २ समिधा को अग्नि में डालें।

ओं अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्द्धस्व चेद्ध वर्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा ॥ इदमग्नये जातवेदसे इदन्न मम ॥१॥

आश्वलायन गृह्य सूत्र १।१०।१२॥

से पहिली समिधा।

अर्थ—(जातवेदः ते) इस अग्नि का (अयम) यह (इध्मः) काष्ट (आत्मा) आधार है (तेन) इस काष्ट से (इध्यस्व) प्रदीप्त होवे (वर्द्धस्व च) और बढ़े (अस्मान् च) और हमको (इत् ह) अवश्य ही (प्रजया) पुत्रादि से [यज्ञ-द्वारा] (वर्धय) बढ़ाये और (पशुभिः) पशुओं से (ब्रह्मवर्चसेन) बड़ी कान्ति से (अन्नाद्येन) अन्न आदि से हमें (सम् एधय) अच्छे प्रकार बढ़ाये। (स्वाहा) हमारा दिया सुहुत हो। (इद-मग्नये जातवेद से इदन्नमम) यह जातवेदस् अग्नि के लिये है, मेरे लिये नहीं।

भावार्थ—यज्ञ द्वारा बल की प्राप्ति होती है, अच्छे पशु

उत्पन्न होते हैं, अच्छे अन्नों की उत्पत्ति होती है, उनके सेवन से ही लोग अच्छी सन्तान उत्पन्न करने में समर्थ होते हैं। सब प्रकार की वृद्धि यज्ञ से ही होती है। इसलिये हमें नियम पूर्वक अग्निहोत्र आदि यज्ञ करने चाहियें।

ओं समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्।
आस्मिन् हव्या जुहोतन ॥२॥ यजु० ३।१॥

अर्थ—हे विद्वान लोगो! तुम (समिधा) जिन ईंधनों से अच्छे प्रकार प्रकाश हो सकता है, उन लकड़ी घी आदिकों से (अग्निम्) भौतिक अग्नि को (बोधयत) उद्दीपन अर्थात् प्रकाशित करो तथा जैसे (अतिथिम् अतिथि का सेवन करते हैं, वैसे अग्नि का (दुवस्यत) सेवन करो और (अस्मिन्) इस अग्नि में (हव्या) सुगन्ध कस्तूरी केसर आदि, मिष्ठ गुड़ शक्कर आदि पुष्ट घी दूध आदि, रोग को नाश करने वाले सोमलता अर्थात् गुड़ूची आदि औषधी इन चार प्रकार के शाकल्य (आजुहोतन) अच्छे प्रकार हवन करो।

भावार्थ—जैसे गृहस्थ मनुष्य आसन, अन्न, जल, वस्त्र और प्रिय बचन आदि से उत्तम गुण वाले सन्यासी आदि का सेवन करते हैं, वैसे ही विद्वान् लोगों को यज्ञ, वेदी, कला यन्त्र और यानों में स्थापन कर यथायोग्य इन्धन घी जलादि से अग्नि को प्रज्वलित करके वायु, वर्षाजल की शुद्धि वा यानों की रचना नित्य करनी चाहिये।

ओं सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन। अग्नये

जातवेदसे स्वाहा ॥ इदमग्नये जातवेदसे इदन्न मम ॥३॥
यजु० ३।२॥

अर्थ—हे मनुष्य लोगो ! तुम (सुसमिद्धाय) अच्छे प्रकार प्रकाश-रूप (शोचिषे) शुद्ध किये हुये दोषों को निवारण करने वाले (जातवेदसे) सब पदार्थों में विद्यमान (अग्नये) रूप, दाह, प्रकाश, छेदन आदि गुण स्वभाव वाले अग्नि में (तीव्रम्) सब दोषों के निवारण करने में तीक्ष्ण स्वभाव वाले (घृतम्) घी मिष्ट आदि पदार्थों को (जुहोतन) गेरो।

भावार्थ— मनुष्यों को इस प्रज्वलित अग्नि में जल्दी दोषों को दूर करने वा शुद्ध किये हुये पदार्थों को गेर कर इष्ट सुखों को सिद्ध करना चाहिये।

इन दोनों मन्त्रों से दूसरी समिधा। फिर—

ओं तन्त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्द्धयामसि।
बृहच्छोचायविष्ठ्य स्वाहा। इदमग्नयेऽङ्गिरसे इदन्न मम ॥४॥
यजु० ३।३॥

अर्थ—हम लोग जो (अङ्गिरः) पदार्थों को प्राप्त कराने वा (यविष्ठ्य) पदार्थों के भेद करने में अति बलवान् (बृहत्) बड़े तेज से युक्त अग्नि (शोच) प्रकाश करता है (त्वा) उसको (समिद्भिः) काष्ठादि वा (घृतेन) घी आदि से (वर्द्धयामसि) बढ़ाते हैं।

भावार्थ—मनुष्यों को जो सब गुणों से बलवान् पूर्व कहा हुआ अग्नि है, वह होम और शिल्पविद्या की सिद्धि के लिये लकड़ी घी आदि साधनों से सेवन कर के निरन्तर वृद्धि-युक्त करना चाहिये।

से तीसरी समिधा।

तत्पश्चात् इस मन्त्र से घी की पांच आहुतियां दें।

ओं अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्द्धस्व चेद्ध वर्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा। इदमग्नये जातवेदसे इदन्नमम॥

आश्वलायन गृह्यसूत्र १।१०।१२॥

अर्थ—ऊपर कर दिया गया है।

फिर इन मन्त्रों से वेदी के चारों ओर जल छिड़कें।

ओ३म् अदितेऽनुमन्यस्व—से पूर्व दिशा में। गोभिल गृ० ३।१॥

अर्थ—हे अखण्ड ब्रह्म! आप अनुकूल मति दीजिये।

ओ३म् अनुमतेऽनुमन्यस्व—से पश्चिम में। गो० गृ० ३।२॥

अर्थ—हे व्यापक ज्ञान स्वरूप! अनुकूल मति दीजिये।

ओ३म् सरस्वत्यनुमन्यस्व—से उत्तर में। गोभि० गृ० ३।३॥

अर्थ—हे ज्ञानस्वरूप! अनुकूल मति दीजिये।

ओ३म् देव सवितः प्रसुव यज्ञं, प्रसुव यज्ञपतिं भगाय। दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतन्नः, पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु॥

यजु० ३०।१॥

से चारों ओर जल छिड़कें।

अर्थ—(देव) हे दिव्य स्वरूप (सवितः) सब जगत् के उत्पादक परमेश्वर! (यज्ञं) यज्ञ को (प्रसुव) सिद्ध कीजिये, (यज्ञपतिं) यज्ञ के पालक राजा वा यजमान को (भगाय) ऐश्वर्य के लिये (प्रसुव) उत्पन्न वा प्रेरित कीजिये। (दिव्यः) शुद्ध

स्वरूप (गन्धर्वः) पृथिवी को धारण करने वाला (केतपूः) विज्ञान को पवित्र करने वाला [जगदीश्वर वा राजा] (नः) हमारी (केतम्) बुद्धि को (पुनातु) पवित्र करे और (वाचः पति) वाणी का रक्षक (नः) हमारी (वाचम्) वाणी को (स्वदतु) मीठी, चिकनी, कोमल, प्रिय करे।

भावार्थ—जो विद्या की शिक्षा को बढ़ाने वाला शुद्ध गुण कर्म स्वभाव युक्त राज्य की रक्षा करने को यथायोग्य ऐश्वर्य को बढ़ाने हारा धर्मात्माओं का रक्षक परमेश्वर का उपासक और समस्त शुभ गुणों से युक्त हो, वही राजा होने के योग्य होता है।

अब निम्नलिखित मन्त्रों से दो घृताहुति देवें।

ओ३म् अग्नये स्वाहा इदमग्नये इदन्न मम ॥१॥

इस मन्त्र से वेदी के उत्तर भाग अग्नि में—

अर्थ—प्रकाश स्वरूप परमात्मा की प्राप्ति के लिये श्रद्धा पूर्वक आहुति देता हूँ।

ओ३म् सोमाय स्वाहा। इदं सोमाय इदन्न मम ॥२॥

गोभिल गृ० १। ८। २४ यजु० २२। २७॥

इस मन्त्र से वेदी के दक्षिण भाग अग्नि में।

अर्थ—सोमस्वरूप सब जगत् में रस मिठास आदि के उत्पादक परमात्मा के निमित्त मैं यह आहुति देता हूं—

अब नीचे के दो मन्त्रों से मध्य में घृताहुति दें।

ओ३म् प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये इदन्न मम। १॥

यजु० १८।२८

अथ—प्रजा के पालक भगवान् के निमित्त।

ओ३म् इन्द्राय स्वाहा। इदमिन्द्राय इदन्न मम ॥२॥

यजु० २२।।२७

अर्थ—सर्व ऐश्वर्यों के स्वामी परमात्मा के निमित्त०

नित्यप्रति के हवन में इसके पश्चात् प्रातः काल या सायं काल के मन्त्रों से आहुतियाँ दी जाती हैं परन्तु साप्ताहिक, पाक्षिक वा अन्य विशेष हवनों में प्रातः या सायं की आहुतियों से पूर्व निम्न लिखित मन्त्रों से आहुतियां दें।

ओं भूरग्नये स्वाहा। इदमग्नये इदन्न मम॥

अर्थ—सर्वाधार प्राणों से प्रिय ज्ञानस्वरूप परमेश्वर के निमित्त।

ओं भुवर्वायवे स्वाहा। इदं वायवे इदन्न मम॥

अर्थ - दुःखों के दूर करने वाले व्यापक परमात्मा के निमित्त।

ओं स्वरादित्याय स्वाहा। इदमादित्याय इदन्न मम।

अर्थ—सुख स्वरूप अखण्ड प्रकाशस्वरूप ईश्वर के निमित्त।

ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा। इदमग्नि वाय्वादित्येभ्यः इदन्न मम॥

अर्थ—उपर्युक्त सब गुणों से सम्पन्न परमात्मा के निमित्त।

तत्पश्चात् निम्न स्विष्टकृत होमाहुति घृत, मिष्ठान्न वा भात से दें। साथ ही सामग्री की आहुतियां भी आरम्भ कर दें।

ओं यदस्य कर्मणोत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरम्। अग्निष्टत्स्विष्टकृद्विद्यात् सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु

मे। अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते सर्व प्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां समर्द्धयित्रे सर्वान्नः कामान्त्समर्द्धय स्वाहा। इदमग्नये स्विष्टकृते इदन्न मम ॥१॥

शतपथ० १४। ६।४। २४

अर्थ—(यत्) जो (अस्य कर्मणः) इस कर्म के विषय में (अत्यरीरिचम्) मैं ने अधिक किया (यद्वा) अथवा (न्यूनम् इह) यहां थोड़ा (अकरम्) किया है (स्विष्टकृत्) यज्ञ का पूर्ण करने वाला (अग्निः) परमात्मा (सर्वं स्विष्टं) वह अच्छे प्रकार यज्ञ किया हुआ (विद्यात्) जाने और (तत्) वह (मे) मेरे लिये (सुहुतम्) अच्छे प्रकार होमा हुआ (करोतु) करे। (स्विष्टकृते) यज्ञ को पूर्ण करने वाले (सुहुतहुते) सुहुत को ग्रहण करने वाले और (सर्व प्रायश्चिताहुतीनां) प्रायश्चित्त की सब आहुतियों के (कामानां) और शुभ कामनाओं के (समर्धयित्रे) पूर्ण करने वाले (अग्नये) परमात्मा के लिये (स्वाहा) आहुति देता हूं, (नः) हमारी (सर्वान्) सब (कामान्) शुभ कामनाओं को (समर्द्धय) पूर्ण करो। (इदं......मम) यह यज्ञ को पूर्ण करने वाले अग्नि परमात्मा के लिये है।

फिर नीचे लिखे मन्त्र को मन में बोल के एक आहुति दें।

ओं प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये इदन्न मम ॥

अर्थ—प्रजा के पालक उस परमात्मा के लिये।

फिर आगे लिखी चार आहुतियां दें, जो चौल, समावर्त्तन और विवाह में मुख्य हैं।

ओं भूर्भुवः स्वः । अग्न आयूंषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः । आरे बाधस्वदुच्छुनां स्वाहा । इदमग्नये पवमानाय इदन्न मम ॥१॥ ऋ० ६।६६।१६ ॥

अर्थ—(ओं भूर्भुवः स्वः) सच्चिदानन्द ब्रह्म (अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! हमारे (आयूंषि) जीवनों की (रक्षसे) तू रक्षा करता है। (नः) हमारे लिये (ऊर्जम्) बल (इषं च) और अन्न को (आसुव) प्रदान कर। (दुच्छुनां) राक्षसों को (आरे) दूर (बाधस्व) दबा। (इदमग्नये पवमानाय...) यह हवि पवित्र करने वाले प्रकाशस्वरूप परमात्मा.....

भावार्थ—परमात्मा हमारा सच्चा रक्षक है, वही हमें अन्न और जल का देने वाला है।

ओं भूर्भुवः स्वः । अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः । तमीमहे महागयं स्वाहा । इदमग्नये पवमानाय इदन्न मम ॥२॥ ऋ० ६।६६।२०॥

अर्थ—(ओं भूर्भुवः स्वः) जो (ऋषि) सर्वद्रस्टा (पवमान) पवित्र करने वाला (पांचजन्य) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वश्य, शूद्र, और वर्णों से बाह्य का कार्य साधक (पुरोहितः) नेता—शुभ कर्मों में प्रेरक (अग्निः) प्रकाश स्वरूप परमात्मा है, (तम्) उस (महागयम्) स्तुति के योग्य महाबलवान् परमात्मा को (ईमहे) हम प्राप्त होते हैं।

भावार्थ—वह परमात्मा सबको पवित्र करने वाला है। वह शुभ कर्मों में सफलता देता है हमें उसी का आश्रय लेना चाहिये।

ओं भूर्भुवः स्वः। अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम्। दधद्रयिं मयि पोषं स्वाहा। इदमग्नये पवमानाय इदन्न मम ॥३॥ ऋ० ९।६६।२१॥

अर्थ—(अग्ने) हे प्रकाश स्वरूप परमात्मन्! (पवस्व) आप हमें पवित्र करें। (स्वपाः) आप शोभन कर्मों वाले हैं (अस्मे) हम में (वर्चः) ब्रह्मतेज (सुवीर्यम) और सुन्दर बल (दधत) धारण करायें। (मयि) मुझ में (रयिम्) ऐश्वर्य (पोषम्) और पुष्टि को (दधत्) धारण करायें।

भावर्थ—जो पुरुष परमात्म-परायण होते हैं, परमात्मा उन में सब प्रकार के ऐश्वर्यों को धारण कराता है।

ओं भूर्भुवः स्वः। प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा-जातानि परिता बभूव। यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणां स्वाहा। इदं प्रजापतये इदन्न मम ४।

इस मन्त्र का अर्थ प्राथना मन्त्रों में हो चुका है वहां देखें।

फिर निम्न लिखित मन्त्रों से आठ आहुतियां देवें।

ओं त्वन्नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेडाऽवया सिसीष्ठाः। यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्रमुमुग्ध्यस्मत् स्वाहा। इदमग्निवरुणाभ्याम् इदन्न मम ॥१॥ ऋ० ४।१।४॥

अर्थ—(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! (यजिष्ठः) अतीव यज्ञ करने वाला (शोशुचानः) अत्यन्त प्रकाशमान् हुआ (विद्वान्) सब कुछ जानने वाला परमात्मा (त्वम्) तू (वरु-

ष्ठस्य) श्रेष्ठ (देवस्य) दिव्यस्वरूप परमात्मा वा विद्वान् का (हेलः) अनादर (नः) हम से (अवयासिसीष्ठा) दूर कर [निवारण कर] । (अस्मत्) हम से (विश्वा) सब (द्वेषांसि) द्वेष युक्त कर्मों को (प्रमुमुग्धि) पृथक् कर ।

भावार्थ—परमात्मा की आज्ञा का उल्लंघन करना उसका अनादर है । विद्वानों के उपदेश पर आचरण न करना उनका अनादर है । इस मन्त्र में इस अनादर और द्वेष से बचने की प्रार्थना की गई है ॥१॥

ओं स त्वन्नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ । अवयक्ष्व नो वरुणं रराणो वीहि मृडीकं सुहवो न एधि स्वाहा । इदमग्निवरुणाभ्यां इदन्न मम॥२॥

ऋ० ४।१।५

अर्थ—हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप प्रभो ! (सः) वह (त्वम्) आप (अस्याः) इस (उषसः) प्रभात समय के (व्युष्ठौ) प्रकाश (विशेषदाह) में (नेदिष्ठः) अत्यन्त समीप स्थित (ऊती) रक्षा आदि द्वारा (नः) हमारे (अवमः) रक्षा करने हारे (भव) हूजिये । (नः) हमको (वरुणम्) वरणीय आप परमात्मा वा श्रेष्ठ विद्वान् को (रराणः) देते हुये (अवयक्ष्व) प्राप्त हूजिये, तुम (मृडीकं) सुख देने वाले को (वीहि) व्याप्त होओ (नः) हमको (सुहवः) अच्छी प्रकार बुलाये जाने वाले (एधि) हूजिये ।

भावार्थ—परमात्मा सदा हमारा रक्षक है, हमें सब सुखों की प्राप्ति के लिये उसी की शरण लेनी चाहिये ॥२॥

ओं इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय । त्वामवस्युराचके स्वाहा ॥ इदं वरुणाय इदन्न मम ॥३॥

ऋ० १।२५।१६

अर्थ—(वरुण) हे वरणीय परमात्मन् ! (अद्य) आज (अवस्युः) अपनी रक्षा वा विज्ञान की इच्छा करने हारा मैं (त्वाम्) तुझ को (आचके) अच्छी प्रकार प्रशंसा करता हूं वह तू (मे) मेरी (इमं) इस (हवम्) स्तुति को (श्रुधी) सुन (च) और मुझे (मृडय) सुखी कर ।

भावार्थ—जैसे परमात्मा जो उपासक लोगों की निश्चय कर के सत्य भाव और प्रेम के साथ की हुई स्तुतियों को अपने सर्वज्ञापन से यथावत् सुनकर उनके अनुकूल स्तुति करने वालों को सुख देता है, वैसे विद्वान् लोग भी धार्मिक मनुष्यों की योग्य प्रशंसा को सुन सुखयुक्त किया करें ॥३॥

ओं तत्त्वायामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः । अहेळमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्रमोषीः स्वाहा ॥ इदं वरुणाय इदन्न मम ॥४॥

ऋ० १।२४।११॥

अर्थ—(उरुशंस) हे सब के प्रशंसनीय (वरुण) जगदीश्वर ! (त्वा) आप को प्राप्त करने के लिये (यजमानः) (पाँच प्रकार के यज्ञ का अनुष्ठान करने वाला) यजमान (हविर्भिः) होमादि साधनों से (तत्) अत्यन्त सुख की (आ, शास्ते) इच्छा करता है, उस तुझ को (ब्रह्मणा) वेद के विज्ञान

से (वन्दमानः) स्तुति वा अभिवादन करता हुआ (अहेलमानः) अनादर न करता हुआ मैं उस (त्वा) तुझको (यामि) प्राप्त होता हूं वा चाहता हूं। (इह) इस संसार में (बोधि) (विदित गुणों वाले होवें) मुझे अपने बोध युक्त करें (नः) हमारे (आयुः) जीवनका (मा) मत (प्र, मोषीः) अपहरण कर।

भावार्थ—मनुष्यों को वेदोक्त रीति से परमेश्वर और सूर्य को जानकर सुखों को प्राप्त होना चाहिये और किसी मनुष्य को परमेश्वर का अनादर न करना चाहिये, सर्वथा ईश्वर की आज्ञा का पालन और उसके रचे हुये जो कि सूर्यादिक पदार्थ हैं उन के गुणों को जानकर उनसे उपकार ले के अपनी उमर निरन्तर बढ़ानी चाहिये ॥४।

ओं ये ते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः। तेभिर्नो अद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा। इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यः इदन्न मम ॥५॥

कात्यायन श्रोत २५।१।११॥

अर्थ—(वरुण) हे स्वीकार करने योग्य परमात्मन्! (ये ते) जो वे (शतं) सैंकड़ों (सहस्रं) हज़ारों (यज्ञियाः) यज्ञ के विषय में (वितताः) फैले हुये (महान्तः) बड़े २ (पाशाः) जाल, फांस, वा रुकावटें हैं (तेभिः) उन से (नः) हमें (अद्य) अब (सविता, उत, विष्णुः) आप की सर्वोत्पादक व प्रेरक शक्ति और सर्वव्यापक आप और (विश्वे) सब (स्वर्काः) पूजनीय

(मरुतः) विद्वान् लोग (मुञ्चन्तु) छुड़ावें। इदं............) यह आहुति वरुण, सविता, विष्णु नामों वाले परमात्मा और पूजनीय विद्वानों के लिये है, मेरी नहीं।

भावार्थ—परमात्मा हमें बन्धनों से मुक्त करने वाला है। विद्वानों के सत्सङ्ग से हम प्रभु भक्ति के मार्ग पर चल सकते हैं। इस लिये यह आवश्यक है कि हमें विद्वानों का सङ्ग और परमात्मा की भक्ति करनी चाहिये ॥ ५ ॥

ओं अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशस्तिपाश्च सत्यमित्व-मयासि। अया नो यज्ञं वहास्यया नो धेहि भेषजँ स्वाहा इदमग्नये अयसे इदन्न मम ॥६॥ कात्या० २५।११॥

अर्थ—(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप प्रभो ! आप (अयाः) सब स्थानों को प्राप्त [सर्वव्यापक] (असि) हैं। (च) और (अनभिशस्तिपाः) पापरहित पुरुषों के पालक (च) और (अयासि) सर्वव्यापक हो, (सत्यम् इत्) यह बात सर्वथा सत्य है। (अयाः) आप हमारे आश्रय हो कर (नः) हमारे (यज्ञं) यज्ञ को (वहासि) सफलता रूपी लक्ष्य को पहुँचाते हैं। (नः) हमारे लिये (भेषजम्) आरोग्य को (धेहि) धारण करें॥ (इदं..........) यह सर्वत्र व्यापक के लिये......॥

भावार्थ—परमात्मा सर्वव्यापक है, पापरहित लोगों का पालक है। उसीसे यज्ञ की सफलता की प्रार्थना करनी चाहिये।६।

ओं उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं विमध्यमं श्रथाय। अथा वयमादित्य व्रते तवानागसोऽदितये स्याम

स्वाहा॥ इदं वरुणायाऽऽदित्यायाऽदितये च इदन्न मम॥७॥
ऋ० १।२४।१५॥

अर्थ—(वरुण हे स्वीकार करने योग्य प्रभो ! (अस्मत्) हमसे (अधमम्) निचले दर्जे का (मध्यमम्) मध्यम कक्षा का (उत्) और (उत्तमम्) अति दृढ़ अत्यन्त दुःख देने वाले (पाशम्) बन्धन को (वि+अव+श्रथाय) अच्छे प्रकार नष्ट करें (अथ) इसके अनन्तर (आदित्याय) हे अविनाशी परमात्मन् ! (वयम्) हम (तव व्रते) तेरे सत्याचरण आदि व्रत को करके (अनागसः) निष्पाप होके (अदितये) मोक्षानन्द के लिये (स्याम) नियत होवें॥ (इदं·········) यह वरुण, आदित्य······॥

भावार्थ—जो ईश्वर की आज्ञा को यथावत् नित्य पालन करते हैं वे ही पवित्र और सब दुःख बन्धनों से अलग होकर सुखों को निरन्तर प्राप्त होते हैं ॥७॥

ओं भवतन्नः समनसौ सचेतसावरेपसौ। मा यज्ञँ हिँ सिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः स्वाहा। इदं जातवेदोभ्यां इदन्न मम ॥८॥ यजु० ५।३।

अर्थ—(अरेपसौ) पाप रहित (समनसौ) समान मन वाले, वा तुल्य विज्ञानयुक्त (सचेतसौ) समान चित्त वाले वा तुल्य विज्ञानयुक्त (जातवेदसौ) वेद और उपविद्याओं को सिद्ध किये हुये पढ़ने पढ़ाने वाले विद्वान् (नः) हम लोगों के लिये (उपदेश करने वाले) (भवतम्) हों और (यज्ञम्) यज्ञ

और (यज्ञपतिम्) यज्ञ के पालन करने वाले यजमान को (मा हिंसिष्टम्) न पीड़ित करें। वे (अद्य) अब (नः) हम लोगों के लिये (शिवौ) मङ्गल करने वाले (भवतम्) होवें।

भावार्थ—मनुष्यों को उचित है कि विद्या प्रचार के लिये पढ़ना पढ़ाना वा मङ्गलाचरण को न छोड़ें क्योंकि यही सर्वोत्तम कर्म है ॥८॥

फिर निम्न मन्त्रों से प्रातः काल को आहुतियाँ दें।

ओं सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा ॥१॥

अर्थ—(सूर्यः) जो चराचर का आत्मा (ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः) ज्योतियों अर्थात् प्रकाशकों की भी ज्योति अर्थात् प्रकाश सब का प्राण स्वरूप परमेश्वर है उसके लिये स्वाहा अर्थात् जगत् के उपकार के लिये हम यह आहुति देते हैं ॥१॥

ओं सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा ॥२॥

अर्थ—जो (सूर्यो वर्चः) सब कुछ जानने वाला (ज्योतिः) ज्योतियों अर्थात् ज्ञानी जीवों का भी (वर्चः) अन्तर्यामी रूप से सत्योपदेष्टा सूर्यनामक परमात्मा है उसके लिये० (शेष पूर्ववत्) ॥२॥

ओं ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा ॥३॥

यजु० ३।९॥

अर्थ—(ज्योतिः) जो स्वयं प्रकाशस्वरूप (सूर्यः) सब जगत् का प्रकाशक (सूर्यः ज्योतिः) सूर्य नामक जगदीश्वर है उसके लिये ० (शेष पूर्ववत्) ॥३॥